संस्थापक :
योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्ध योग

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

वर्ष : 42; अंक : 2
मई, 2009

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

उत्साहो बलवानार्यनास्त्युत्साहात् परं बलम्।
सोत्साहस्य हि लोकेषु न किंचिदपि दुर्लभम्।।

(वाल्मीकि रामा. किष्कि.7)

उत्साह ही बलवान होता है, उत्साह से बढ़कर दूसरा कोई बल नहीं है। उत्साही पुरुष के लिए संसार में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है।

● ● ●

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्य: परं मन:।
मनसस्तु पराबुद्धिर्यो बुद्धे: परतस्तु स:।।

(श्रीमद् भागवद् गीता)

इन्द्रियाँ श्रेष्ठ है, इन्द्रियों की अपेक्षा 'मन' अधिक श्रेष्ठ है, मन की अपेक्षा 'बुद्धि' अधिक श्रेष्ठ है और बुद्धि की अपेक्षा 'आत्मा' अधिक श्रेष्ठ है।

● ● ●

सर्वमन्यत् परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्।
तद्मावोही भावानां सर्वाभाव: शरीरिणाम्।।

(चरक निदान 6–7)

सभी कार्यों को छोड़कर, सबसे पहले शरीर के पालन पोषण पर ध्यान देकर शरीर की रक्षा करनी चाहिए। क्योंकि शरीर है तो सब कुछ है और अगर शरीर ही न रहे तो फिर कुछ भी नहीं रहता।

● ● ●

न पुष्पगन्धो पटिनातमेति न चन्दनं तगरं मल्लिका वा।
संत च गन्धो पटिवातमेति सब्बा दिसा सप्पुरिसोपवाति।।

(धम्म पद)

फूलों की सुगन्ध वायु के विपरीत दिशा में नहीं जा सकती, न चन्दन की, न तगर की, न चमेली और बेला के फूलों की सुगन्ध ही जा सकती है। परन्तु सज्जनों के सद्गुणों की सुगन्ध विपरीत दिशा में भी फैलती है।

● ● ●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 42 अंक : 2

यस्मादिदं जगदुदेति चतुर्मुखाद्यं
यस्मिन्नवस्थितमशेषमशेषमूले।
यत्रोपयाति विलयं च समस्तमन्ते
दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः।।

जिस परमात्मा से यह ब्रह्मा आदि रूप जगत प्रकट होता है और सम्पूर्ण जगत के कारणभूत जिन परमेश्वर में यह समस्त संसार स्थित है तथा अनन्त काल में यह समस्त जगत् जिनमें लीन हो जाता है, वे दीनबन्धु भगवान आज मेरे नेत्रों के समक्ष दर्शन दें।

मई 2009

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 13
3. सोऽहम् जप का रहस्य –श्री आर.सी. ठाकुर 15
4. महाप्रभु रामलाल जी व उनके सिद्धयोगी बच्चे –अवनीश भटनागर 22
5. आएंगे गुरुजी, मुझे देने सहारा –जगदीश राए बंसल 'अधम' 26
6. गुंजन डा. विजय सिंह 27
7. जीव की दो गतियाँ –जनक कुलश्रेष्ठ 31
8. राम का रामत्व –राजेश कुमार सिंह 34
9. अष्टाङ्ग योग –डा. ऋषिराम शर्मा 38

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 130.00
द्विवार्षिक	: रु. 250.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

विशेष लेख

योगी की अचिंत्य शक्ति

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन श्री महाराज

यद्यपि योगी की शक्ति का वर्णन करना सहज बात नहीं है फिर भी पाठकों की योग जिज्ञासा बढ़े, इस बात को दृष्टि में रखते हुए योगी की क्या ताकत हुआ करती है इस पर संक्षिप्त प्रकाश डालने का प्रयास किया जा रहा है। अखिल लोक पावन भगवान श्री कृष्ण जी ने भगवद्गीता के छठे अध्याय में युक्त योगी का परिचय देते हुए निम्नांकित श्लोक कहा है जिसको पढ़कर के हर व्यक्ति यह समझ सकेगा कि योगी की सीमा कहाँ तक है -

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रिय:।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्ठाश्मकाञ्चन:॥

(गीता-6/8)

अर्थात्-युक्त योगी वह कहलाता है जिसका हृदय ज्ञान और विज्ञान से परिपूर्ण हो चुका हो और जिसने विकार रहित स्थिति उपलब्ध कर ली है। जिसके लिए लोहा, पत्थर, सोना सब एक समान है। ऐसा योगी **युक्त योगी** कहलाता है। ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा का अर्थ है कि प्रकृति के सारे विश्लेषणों को समझ करके संयम विधि से उन पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने वाला योगी ज्ञान तृप्तात्मा एवं जिसने पूर्णतया आत्मा का साक्षात्कार कर लिया है वह विज्ञान तृप्तात्मा कहलाता है। जिसको कामादि नहीं सताते है, अर्थात् विकार वाली स्थिति से जो आगे निकल जाता है ऐसा योगी युक्त योगी कहलाता है। योगियों के इस प्रकार के इतिहास मिलते हैं जिन्होंने पूर्णता को पाकर के लोहा, मिट्टी और सोना सबको बराबर समझा। श्री गोरखनाथ जी का वह उदाहरण यहाँ पूर्ण रूप से लागू होता है जबकि वह अपने गुरु देव को सिंहल द्वीप से लाने के लिए छद्म वेष से सिंहलद्वीप गये और अपने गुरु श्री मत्स्येन्द्रनाथ को साथ लौटा लाये थे। जिस समय श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी सिंहलद्वीप से श्री गोरखनाथ जी की प्रेरणानुसार चले थे तो उन्होंने कुछ अर्थाभाव को दूर करने की इच्छा से दो सोने की ईंटें अपने पास रख ली थी, जिसके परिणाम स्वरूप वह हर समय चिंतित रहा करते थे कि इनको कोई चुरा न ले जाये। किन्तु जिस समय गोरखनाथ जी ने इस रहस्य को जाना तो उन्होंने वे दोनों सोने की ईंटें उठाकर कुएँ में डाल दी और आगे को चल पड़े। थोड़ा समय व्यतीत हो जाने के बाद मार्ग चलते हुए जिस समय श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी ने अपनी सोने की ईंटों को नहीं पाया तो [illegible] उत्तेजित हुए। श्री गोरखनाथ जी ने अपने गुरुदेव के मन को [illegible] उनका हलका [illegible]

"गुरुदेव आप क्यों चिन्तित हैं?" उन्होंने सत्य–सत्य कारण बतला दिया। इस पर श्री गोरखनाथ जी हँसे और अपने गुरुदेव श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी से बोले कि महाराज आप सोने की दो ईंटों की क्यों चिंता करते हो, यह देखो यह पत्थर सोने का है। यह कहकर उन्होंने एक बड़ी भारी चट्टान पर मूत्र त्याग किया तो वह सारी चट्टान तत्क्षण सोने की बन गई। इस आश्चर्य को देखकर मत्स्येन्द्रनाथ जी समझ गये कि गोरखनाथ की कितनी शक्ति है। योगी जिस समय षट्चक्रों पर संयम करता हुआ चलता है और मणिपूरक चक्र में पहुँच कर वहाँ संयम करता है तो उस चक्र के ध्यान का जो फल मिलता है, उसका वर्णन भगवान शिव ने शिव संहिता में इस प्रकार किया है:–

तस्मिन् ध्यानं सदा योगी करोति मणि पूरके।
तस्य पाताल सिद्धिः स्यान्निरन्तर सुखावहा।।
ईप्सितं च भवेल्लोके, दु:ख रोग विनाशनम्।
कालस्य वचनं चापि परदेह प्रवेशनम्।।
जाम्बूनदादि करणं सिद्धानां दर्शन भवेत्।
औषधी दर्शनं चापि निधीनां दर्शन भवेत्।।

अर्थात्–उस पवित्र मणिपूरक चक्र में जो योगी ध्यान करता है उसको पातालसिद्धि अर्थात् पाताल में प्रवेश करने की ताकत प्राप्त हो जाती है और संसार में रहते हुए जिस चीज की वह कामना करता है वह ईप्सित पदार्थ उसे अवश्य प्राप्त हो जाता है। उसके सब प्रकार के दु:खों का अवश्य नाश हो जाता है और उस योगी पर काल का अधिकार नहीं रहता। परदेह में प्रवेश करना, दिव्य औषधियों का ज्ञान, निधिदर्शन् और सोना बनाने की ताकत उसे प्राप्त हो जाती है। यदि वह योगी तीव्र संकल्प से मिट्टी या पत्थर पर मूत्रोत्सर्ग करेगा तो वह पत्थर आदि सोने में परिवर्तित हो जायेगा।

अपने गुरुदेव श्री मत्स्येन्द्रनाथ को भ्रमित समझकर अपनी इस विपुल शक्ति का प्रयोगात्मा रूप श्रीगोरखनाथ जी ने तत्काल करके दिखा दिया।

उपनिषदों में योगी की अद्भुत शक्ति का वर्णन किया गया है। जैसे:–

अचिन्त्य शक्तिमान्योगी नाना रूपाणि धारयेत्।
संहरेच्च पुनस्तानि स्वेच्छया विजितेन्द्रियः।।
नासौ मरणमाप्नोति पुनर्योग बलेन तु।
हठेन मृत एवासौ मृतस्य मरणं कुतः।।
मरणं यत्र सर्वेषां तत्रासौ परिजीवति।
यत्र जीवन्ति मूढ़ास्तु तत्रासौ मृत एव वै।।
कर्तव्यं नैव तस्यास्ति कृतेनासौ न लिप्यते।

जीवन् मुक्त: सदा सदा स्वच्छ: सर्वदोषविवर्जित:।।

अर्थात्–जिस योगी ने सम्प्रज्ञात योग की भूमिकाओं में संयम करते हुए अपने मन पर पूर्णरूपेण वशीकार प्राप्त कर लिया है, उसकी शक्ति अचिंत्य हो जाती है। वह चाहे तो हजारों शरीर एक साथ धारण कर ले और फिर उनका संहार भी कर ले। जिसने अपने आपको हठयोग की साधना के द्वारा मार लिया है वह योगी अमर हो जाता है। जहाँ पर संसार के प्राणियों की मृत्यु होती है, वहाँ पर वह अमर रहता है और जहाँ जिन विषयों के अन्दर ये लोग जिन्दा रहते हैं उन विषयों को वह छूता तक नहीं। उन सब में वह मृत की तरह रहता है। क्योंकि इसने अपने आप पर पूर्ण वशीकार प्राप्त कर लिया है, इसलिए इच्छारूप हो करके तीनों लोकों में जहाँ–तहाँ विचरा करता है। उपरोक्त श्लोक के अन्दर योगी की शक्ति का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार से जगदात्मा अखिल लोक पावन भगवान श्रीकृष्ण जी ने श्रीमद्‌भागवत के 11 वें स्कन्ध में उद्धव को उपदेश देते हुए अपनी अष्टादश सिद्धियों का वर्णन किया है जो अन्तरमुखीवृत्ति वाले को ही धारणा, ध्यान के प्रभाव से प्रगट हुआ करती है। जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण से उद्धव ने प्रश्न किया:–

कया धारणया कास्वित कथंस्वित सिद्धिरच्युत।

कतिवा सिद्धयो ब्रूहियोगिनां सिद्धिदो भवान्।।

अर्थात्– सर्वशक्तिवान् सिद्धियाँ कितने प्रकार की है और किस धारणा से वह किस प्रकार प्राप्त की जाती हैं? आप योगियों को सिद्धियाँ देने वाले है। कृपा करके उन सिद्धियों के नाम व गुण बताइये। इसके उत्तर में भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी अष्टादश सिद्धियों का स्वरूप बतलाया जिनमें से आठ प्रमुख हैं, जो इस प्रकार है:–

सिद्धियो अष्टादश प्रोक्ता धारणा योगपारगै:।

तासामष्टौ मत्प्रधाना दशैव गुण हेतव:।।

अर्थात्–ध्यान योग के वेत्ता योगीराज लोगों ने सिद्धियाँ अठारह प्रकार की बतलाई है जिनमें से आठ मुझ से सम्बन्ध रखने वाली हैं और दश गुणों से पैदा होने वाली हैं।

आठ महासिद्धियाँ जो प्रकृति के विश्लेषणों पर अधिकार प्राप्त करने वाले योगियों को भगवान के निज रूप में तद्रूपता प्राप्त करने पर होती हैं, उनका वर्णन इस प्रकार है:–

आठ महासिद्धियाँ

अणिमा, महिमा मूर्तेर्लघिमा प्राप्तिरिन्द्रियै:।

प्राकाम्यं श्रुतदृष्टेषु शक्ति प्रेरणमीशिता।।

गुणेष्वसंगो वशिता यत्कमस्तदवस्यति।

एता मे सिद्धय: सौम्य अष्टौचौत्पत्तिकामता:।।

अर्थात्–अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व,

यत्रकामावसायित्व, ये आठ महासिद्धियाँ हैं, इनके स्वरूप को इस प्रकार समझ लेना चाहिए।

अणिमा– योगी का अणु के समान बहुत ही सूक्ष्म हो जाना।

महिमा– बड़ा हो जाना।

लघिमा– रूई के समान हल्का हो जाना।

प्राप्ति– सब प्रकार की पहुँच अर्थात् योगी चाहे तो अपनी अंगुली के अग्रभाग से पृथ्वी पर से चन्द्रमा को छू सकता है।

प्राकाम्य– यदृच्छागति, अर्थात् जिस प्रकार सर्वसाधारण मनुष्य पानी में अनायास प्रवेश कर जाता है उसी प्रकार योगी चाहे तो पृथ्वी में प्रवेश कर जाता है।

वशित्व– प्राणीमात्र पर पूर्ण वशीकार प्राप्त कर लेना।

ईशत्रित्व– हुकूमत करना या मालिक होना।

यत्रकामावसायित्व– सत्य संकल्प होना जो विचार मन में आ जाये उसका ही यथार्थपूर्वक होना।

ये योगियों की आठ महासिद्धियाँ हैं जो दृढ़तर अभ्यास करने वाले योगीराज लोगों को ही प्राप्त हुआ करती हैं। समय-समय पर योगियों के इतिहास में इन्हीं सभी सिद्धियों का आविर्भाव पूर्णरूपेण दिखलायी पड़ता है। जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि अष्ट महासिद्धियाँ हर समय वास किया करती हैं और उनके जीवन में स्थान-स्थान पर उनकी चमत्कारिक घटनाओं में यह बिल्कुल स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। कई स्थानों पर वह अन्तर्ध्यान हुए, रासलीला के प्रकरण में गोपियों के अन्दर अभिमान पैदा हो जाने पर तत्काल वहाँ के वहाँ ही अन्तर्ध्यान हो जाना, उनके योग-ऐश्वर्य का परिचायक है। तृणावर्त को मारने के समय रूई के मानिन्द हल्का होकर उसके साथ आकाश में जाना और फिर उसके बाद पत्थर के समान भारी होकर जमीन पर आना – इसमें उनके लघुत्व व गुरुत्व का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। इसी प्रकार से पाताल आदि लोकों से अपने गुरुदेव के मरे हुए पुत्रों को लाकर देना, यह उनका स्पष्ट प्राकाम्य का प्रभाव है। ईशत्व, वशित्व तो उनके जीवन में प्रतिक्षण बना ही रहता है। इसके अतिरिक्त गुण धर्मों से पैदा होने वाली दस उप सिद्धियों का वर्णन भी भगवान ने अपने मुखारविन्द से किया है। वह इस प्रकार है –

दस उप-सिद्धियाँ

अनूर्मिमत्वं देहेऽस्मिन दूर श्रवण दर्शनम्।
मनोजवः कामरूपं परकाय प्रवेशनम्।।
स्वच्छन्द मृत्युर्देवानां सहक्रीडानुदर्शनम्।
यथा संकल्प स सिद्धि राज्ञा प्रतिहतागतिः।।
त्रिकालज्ञत्वमद्वन्द्वं परचित्ताद्यभिज्ञता।

अग्न्यर्काम्बुविषादीना प्रतिष्टम्भोऽपराजय:॥

अनूर्मिमत्व–भूख, प्यास, आदि के वेगों का न होना।

दूरश्रवण दूर दर्शन–दूर की बातें सुनना व दूर तक देखना।

मनोजवित्व–मन के वेग वाला बनना। एक योगी का मन जहाँ जाय तत्काल उसका शरीर वहीं पहुँच जाय। इसको मनोजविता कहते हैं। अर्थात् मन के वेग से पहुँचना। जिस प्रकार हस्तिनापुर में द्रोपदी के चिन्तन मात्र से भगवान श्री कृष्ण का द्वारिका से पहुँचना व उनके वस्त्र को बढ़ाना। दुर्वासा के वन में जाने पर उनके आतिथ्य के लिए द्रोपदी द्वारा श्री कृष्ण का चिन्तन करना और तत्काल श्री कृष्ण का वहाँ पहुँच जाना। ये सब मनोजविता के ही उदाहरण हैं।

कामरूपं–जैसा मन चाहे उसी प्रकार का रूप धारण कर लेना।

परकाय प्रवेशनम्–दूसरे के शरीर में घुस जाना, जिस प्रकार से मण्डन मिश्र के साथ श्री नगर में शास्त्रार्थ करने पर विद्याधरी से परास्त होकर श्री शंकराचार्य जी छ: महीने का अवसर लेकर किसी राजा के शरीर में जाकर घुस गये थे और छ: महीने के बाद विद्याधारी को परास्त किया।

स्वच्छन्द मृत्यु–अपनी इच्छानुसार मृत्यु ग्रहण करना अर्थात् जब तक योगी चाहे जीवित रहे।

देवानांसहक्रीड़ादर्शनम्–देवताओं की अप्सराओं के साथ होने वाली हास विलास वाली क्रीड़ाओं को अनावरण देखना। इनका सम्बन्ध सतोगुण से है। इनके अतिरिक्त:–

त्रिकालज्ञत्व–अर्थात् तीन काल की बातों को जानना।

अद्वन्द–सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास आदि द्वन्दों के वश में न होना।

परिचित्ताद्यभिज्ञता–दूसरे के चित्त की बातों को जानना।

अग्न्यर्काम्बु विषादीनां प्रतिष्टम्भ:–अग्नि, सूर्य, जल और विष आदि का योगियों के शरीर पर कोई भी प्रभाव न पड़ना।

अपराजय–किसी से पराजित न होना।

ये पाँचों सिद्धियाँ भी योगी को अपने योग ध्यान से प्राप्त होती हैं। जितनी सिद्धियों का वर्णन योगदर्शन में श्रीमदभागवत् में, उपनिषदों में या योग वसिष्ठ आदि में मिलता है, वे सब उनका ऐश्वर्य है। मेरे श्री गुरुदेव जी महाराज अपने मुखारविन्द से हिमालय के सिद्धों की आश्चर्यजनक कथायें सुनाया करते थे। जिनको सुनकर आजकल का मनुष्य आश्चर्यचकित हो जायेगा और गप्प कह कर छोड़ देगा। किन्तु बात ऐसी नहीं है। मेरे श्री गुरुदेव जी ने एक बार जिक्र करते हुए बतलाया कि हिमालय के अन्दर इस प्रकार के उच्चकोटि के महात्मा हैं जिन्होंने अपने रोम कूपों से हजारों स्त्री पुरुषों की रचना कर ली। बड़े–बड़े महल व बंगले

बनवा लिये, मालूम पड़ने लगा यह एक नया लोक बसा है, किन्तु उन्होंने जब इस निर्मित सृष्टि का संहार करना चाहा तो एक बार श्वासों का आकर्षण किया और वह सारी शक्ति उन्हीं में विलीन हो गई। यदि आधुनिक समय में इन सब बातों को लोगों के मध्य प्रचारार्थ बताया जाय तो लोग बिल्कुल विश्वास नहीं करेंगे, किन्तु बात इस प्रकार की नहीं है। हमारा पुराना इतिहास इस प्रकार के उपाख्यानों की पूरी-पूरी गवाही देता है। त्रिशंकु का इतिहास आप लोगों ने पढ़ा ही होगा, महाराज त्रिशंकु के निमित्त विश्वामित्र का नए स्वर्ग की रचना करना – इस प्रकार की घटनाओं का ज्वलंत उदाहरण है। इसके अतिरिक्त रामायण में श्री सीता जी के द्वारा श्री राम की बारात का अनुपम प्रबन्ध करना। जनकपुर में भगवान श्री राम चन्द्र जी की बारात के पधारने पर अपनी योग शक्ति से सिद्धियों को लाकर जो आतिथ्य किया वह भी सीता जी की योग शक्ति का पूर्ण परिचायक है। सीता जी ने जिस समय देखा कि बारात शहर में आ गई है और उनके प्राणपति श्री राम चन्द्र जी का पूर्ण आतिथ्य नहीं हो रहा है। ऐसी स्थिति में स्वयं सीता जी ने मन में संकल्प करके सिद्धियों को बुलाया और उचित आतिथ्य का आदेश दिया:-

जानी सिय बरात पुर आई। कछु निज महिमा प्रकटि जनाई।।
हृदय सुमिरि सब सिद्धि बोलाई। भूप पहुनई करन पठाई।।
सिधि सब सिय आयसु। अकनि गई जहाँ जनवास।।
लिए सम्पदा सकल सुख। सुर पुर भोग विलास।।
निज निज वास विलोकि बाराती। सुर सुख सकल सुलभ सब भाँती।।
विभव भेद कछु कोई न जाना। सकल जनक कर करहि बखाना।।
सिय महिमा रघुनायक जानी। हरषे हेतु मरम पहिचानी।।
पितु आगमन सुनत दोई भाई। हृदय न अति आनन्द अमाई।।

अर्थात्-जिस समय श्री सीता जी ने अपने नगर में आई हुई बारात को देखा तो हृदय में स्मरण करके सब सिद्धियों को बुलाया और महाराज दशरथ के आतिथ्य सत्कार के लिये उनको प्रेरित किया। सिद्धियाँ श्री सीता जी के आशीर्वाद को प्राप्त करके देवताओं के नगर में होने वाली सब प्रकार की सम्पत्ति व भोग विलास की सामग्री को लेकर के जहाँ जनवासा था वहाँ गयीं और बड़ा ही अद्भुत वैभव पल में प्रगट कर दिया। बाराती लोग अपने आवासों को देखकर बड़े आश्चर्य चकित थे, किन्तु उस सम्पत्ति के मूल कारण को कोई नहीं समझ सका। सब लोग यही समझते थे कि यह सारा ऐश्वर्य महाराज जनक का ही है, किन्तु एक मात्र श्री रामचन्द जी ने इस बात को जाना:-

सिय महिमा रघुनायक जानी। हरषे हृदय हेतु पहिचानी।।

सीता जी की महिमा को केवल मात्र श्री रघुनाथ जी ने ही जाना और वह अपनी शक्ति के इस प्रभाव को देखकर बड़े हर्षित हुए। सीता उनकी अपनी आत्म शक्ति थी। इसी प्रकार से

श्री भरत जी के भारद्वाज मुनि के आश्रम में पहुँचने पर मुनि की योग शक्ति के प्रभाव को दिखलाने वाली अद्भुत घटना को गुसाईं तुलसीदास जी ने अपने शब्दों में इस प्रकार वर्णन किया है—

राम विरह व्याकुल भरत, सानुज सहित समाज।
पहुँनाई करि हरहुँ श्रम, कहा मुदित मुनिराज।।
रिधि सिधि सिर धरि मुनिवर बानी, बड़ भागिनी आपुहि अनुमानी।

कहहि परस्पर सिधि समुदाई, अतुलित अतिथि राम लघु भाई।
मुनिपद बन्दि करिअ सोई आजु, होई सुख सब राज समाजू।
अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना, जेहि बिलोकि बिलखाहि बिमाना।
भोग बिभूति भूरि भर राखे, देखत जिन्हहि अमर अभिलाषे।
दासी दास साजु सब लीन्हे, जोगवत रहहि मनहु मन दीन्हे।
सब समाजु सजि सिधि पलमाहीं, जे सुख सुरपुर सपनेहु नाहीं।
प्रथमहि बास दिये सबके ही, सुन्दर सुखद जथा रुचि जेही।
बहुरि सपरिजन भरत कहुँ, रिषि अस आयसु दीन्ह।
विधि बिसमय दायकु बिभव, मुनिवर तपबल कीन्ह।।

अर्थात्—भरत जी श्री राम जी को लौटाने के लिए वन में आया देख करके सेना सहित भरत जी के आतिथ्य के लिये भरद्वाज ऋषि ने अपने संकल्प से सिद्धियों को बुलाकर आज्ञा दी कि भरत जी का आतिथ्य करके इनकी रास्ते की थकान को दूर करो। मुनिराज के इन वचनों को सुनकर रिद्धि–सिद्धियों ने उनकी आज्ञा को शिरोधार्य कर और श्री भरत के आतिथ्य की सेवा मिलने पर अपने आपको बड़भागिनी माना। सिद्धियों ने सोचा कि मुनिराज के चरणों में प्रणाम करके श्री भरत के लिए हम वह काम करें जिसको देखकर देवी देवता सब आश्चर्य में पड़ जायें। यह विचार कर उन्होंने सुन्दर–सुन्दर रहने के लिए मकान बनाये जिनको देखकर देवता लोग भी आश्चर्य चकित रह गये। इसके अतिरिक्त उन मकानों में भोग सामग्री को देखकर के देवताओं की अभिलाषायें भी जाग उठीं। बहुत दास दासी बनाये जो मनुष्य को स्वप्न में भी नही मिल सकता। वह सब सुख सिद्धियों ने मुनि की आज्ञा मानकर पल भर में कर दिया और भरत जी व उनकी सेना के लिए उचित स्थान दिये। इस वैभव को देखकर के देवी देवता, वरुण आदि लोकपाल सब हैरान थे, वह वैभव जो मुनिराज ने अपने संकल्प से किया—

आसन, सयन सुबसन बिताना, वन वाटिका विहंग मृग नाना।
सुरभि फूल फल अमिअ समाना, विमल जलाशय विविध विधाना।
असन पान सुचि अमिअ अमी के, देखि लोग सकुचात जमीं के।

सुर सुरभी सुरतरू सब ही के, लखि अभिलाषु सुरेश सची के।

आसन, सुन्दर सेज, अच्छे-अच्छे कपड़े, ऊपर लगाने के चन्दोवे, बड़े सुन्दर वन-वाटिकाएँ, सुन्दर-सुन्दर पक्षी, मृग, बड़ी सुगन्धि वाले फूल, अमृत के समान स्वादिष्ट जल वाले कुआँ, तालाब आदि निर्मल जलाशय, अमृत के समान खाने पीने के पदार्थ और इसके अतिरिक्त सभी के डेरों में कामधेनु, कल्प वृक्ष आदि सम्पत्ति बनाई, बसन्त ऋतु का सुहावना समीर वहाँ चलने लगा। यह सारा का सारा प्रभाव मुनि भरद्वाज की अचिन्त्य योग शक्ति का था। इसी प्रकार के पुराने इतिहास में सैकड़ों उपाख्यान इस प्रकार के हैं जिनको पढ़ करके भारतवर्ष में होने वाले पुराने योगियों की अचिन्त्य योग शक्ति को देखकर मन उमंगित हो उठता है। किन्तु हम अपने महापुरुषों की इस प्रकार की दिव्य घटनाओं को देखकर व सुनकर समझ भी नहीं पाते कि ऐसा हुआ भी था या नहीं। यह तो बहुत पुरानी बात है। अब भी भारतवर्ष में इस प्रकार के महापुरुषों का प्रादुर्भाव होता रहता है जिन्होंने समय-समय पर अपनी योग शक्ति का परिचय दिया है।

संत ज्ञानेश्वर

महाराष्ट्र के संत ज्ञानेश्वर ब्राह्मण कुल में जन्म लेने वाले व सन्यास आश्रम से बदलकर पुनः गृहस्थ में आने वाले एक विप्र की सन्तान थे। उनके जीवन में अलौकिक और आश्चर्यप्रद घटनायें घटीं। ज्ञानेश्वर के चरित्र की धूम जिस समय महाराष्ट्र में मची तो उनके समकालीन 1400 वर्षीय योगी चांगदेव ने बड़ा आश्चर्य माना और वह शेर पर सवार होकर संत ज्ञानेश्वर से मिलने चले। उनकी बहिन मुक्ताबाई ने 14 वर्षीय अपने भाई ज्ञानेश्वर से कहा कि 'भाई! योगी चांगदेव जहरीले सर्पों का चाबुक हाथ में लेकर और खूँखार शेर पर चढ़कर तुमसे मिलने आ रहे हैं।' उस समय ज्ञानेश्वर जी एक कच्ची दीवार पर बैठे हुए थे। उन्होंने अपनी बहिन को आश्वासन दिया और कहा 'मुक्ता चिन्ता मत करो, अपने पास शेर तो नहीं है पर हमारी यह दीवार ही उनके आतिथ्य के लिए आगे बढ़ेगी।' संत ज्ञानेश्वर के इतना संकल्प करने पर दीवार आगे चलने लगी जिसको देखकर सभी लोगों ने आश्चर्य माना और योगी चांगदेव के आश्चर्य का तो ठिकाना ही नहीं रहा। 14 वर्षीय बालक और 1400 वर्षीय योगीराज का अद्‌भुत मिलन हुआ। योगी चांगदेव ने समझ लिया कि यही मेरे गुरुदेव हो सकते हैं और मुझ पर शक्तिपात करके मेरा आत्मोत्थान करायेंगे। अवसर पाकर 1400 वर्षीय योगी ने 14 वर्षीय बाल योगी ज्ञानेश्वर जी की चरण शरण ग्रहण की और अपने आप को कृतार्थ किया। आजकल के इस घोर कलिकाल में भी योगियों की चमत्कारिक घटनायें समय-समय पर घटित होती रहती हैं।

योगदा सोसाइटी के प्रवर्तक
महाशय लहड़ी

जैको पब्लिशिंग हाउस, महात्मा गाँधी रोड, बम्बई, से अंग्रेजी में एक पुस्तक निकली

जिसका नाम 'ऑटोबायोग्राफी ऑफ योगी' – योगानन्द कृत।(Autobiography of Yogi by Yoganand Ji)। इस पुस्तक को पढ़ने वाले लोग श्री महाशय लहड़ी की आत्मकथा को पढ़कर आश्चर्य में पड़ जायेंगे। महाशय श्यामचरण लहड़ी बनारस में निवास करते थे और वे सरकारी कर्मचारी थे। एक बार उनको किसी सरकारी काम से रानीखेत जाने का अवसर हुआ। रानीखेत पहुँचने पर उनके मन के अन्दर धारणा बनी कि वह जंगलों का भ्रमण करें। अपनी इस धारणा के अनुसार जिस समय वह वन में गये तो उनको एक आवाज सुनाई दी कि लहड़ी आओ तुम्हें गुरुदेव याद कर रहे हैं। तुम बहुत दिन के बाद आ रहे हो, लगभग 32 साल से हम तुम्हारे आसन को सम्हाले हुए हैं। महाशय लहड़ी जब कुछ दूर आगे बढ़े तो उनको तपस्वी साधु दिखायी दिये। लहड़ी का मन उन दोनों महात्माओं की ओर स्वभावतः आकर्षित होता जा रहा था। लहड़ी यह विचार कर रहे थे कि ये दोनों साधु मेरे अपने हैं। मैं इनका हूँ। उनको ऐसा आभासित हुआ कि जिस प्रकार कोई मृग अपनी मृगों की टोली से अकेला छूट जाये और बाद इधर–उधर घूमघाम करके अपने उस बिछुड़ी टोली में मिल जाये। जो हर्ष मृग को हुआ करता है, वह हर्ष महाशय श्री श्यामचरण लहड़ी के मन में पूर्णरूपेण भर गया। श्यामचरण लहड़ी ने आगे बढ़कर अपने पिछले जन्म से सुरक्षित रखे आने वाले आसन को देखा, उनको पहचान हुई कि यह आसन मेरा ही होगा। वहाँ खड़े श्री गुरुदेव के दर्शन की तीव्र लालसा मन में पैदा हुई और अपने गुरु भाइयों से कहा कि 'भाई मुझे गुरुदेव के दर्शन कराओ।' दोनों महात्मा लहड़ी महाशय को एक गुफा में ले गये। वहाँ जाकर उन्होंने अपने पूर्व जन्म के गुरुदेव के दर्शन किये। गुरुदेव लहड़ी को देखकर हँसे और कहा कि 'लहड़ी तुम रानीखेत में स्थानान्तरित होकर नहीं आये हो, प्रत्युत चार दिन के लिए तुम्हें यहाँ बुलाया गया है। अभी चार दिन के बाद तुम्हारे ऑफिसर तुम्हें तार देकर बुला लेंगे। अब तुम दीक्षा प्राप्त करो।' उस गुफा में खड़े महाशय लहड़ी के मन में विचार घूमने लगा कि मैं अपने इस प्यारे गुरुदेव का पूजन सोने के मन्दिर में बिठाकर करूँ, किन्तु यह कैसे सम्भव हो सकता है? करोड़ों, अरबों का सोना कहाँ से आये? महाशय लहड़ी के मन में यह धारणा घूम ही रही थी कि उनके गुरुदेव उसके मन के भावों को तत्काल जान गये और कहा – 'बेटा लहड़ी तुम स्वर्ण मन्दिर में बैठकर दीक्षा लेना चाहते हो? अच्छा ऐसा ही हो जाता है। तुम दीक्षा के लिए तैयार हो जाओ।' श्री गुरुदेव के मुख से इस प्रकार के वचन निकल जाने के बाद, महाशय लहड़ी ने देखा कि वहाँ रत्नों से जड़ित बड़ा भारी प्रकाशमय स्वर्ण मन्दिर स्वतः ही तैयार हो गया। गुरुदेव ने आज्ञा दी – 'अच्छा लहड़ी तुम इसमें चले जाओ और इसमें बैठकर हमारा पूजन करो।' महाशय लहड़ी ने उस स्वर्ण मन्दिर में बैठकर अपने गुरुदेव का पूजन किया और उच्चतम आध्यात्म को प्राप्त किया। श्री गुरुदेव ने एकबार में ही उनके सिर पर हाथ रखा और लहड़ी को सिद्धि–शक्तियों का भण्डार बना दिया। महाशय लहड़ी ठीक चार दिन वहाँ रहे। चार दिन के बाद अपने आफीसरों के बुलाने पर पुनः यथास्थान लौट आये।

उसके बाद उनके दिव्य अनुभव दिन दूने रात चौगुने बढ़ने लगे। और थोड़े समय के बाद ही वह पूर्ण योगी बन गये। उन्होंने भारतवर्ष तथा विदेश में योग का बड़ा प्रचार किया। ब्रह्मचारी योगानन्द और उनकी शिष्या बहिन दया महाशय लहड़ी के ही कृपापात्र है। बहिन दया आजकल भी भारतवर्ष में स्थान-स्थान पर 'योगदा सोसाइटी' चला रही हैं।

कानपुर में घटने वाली एक योगी की शक्ति की अद्‌भुत घटना

नरकंकाल में प्राण संचार

18 मई 1961 को आगरा से प्रकाशित होने वाले दैनिक अखबार में एक घटना प्रकाशित हुई जिसको उसने 'स्वतंत्र भारत' अखबार से प्राप्त किया। कानपुर में गंगा के किनारे स्थित अग्रसेन व्यायामशाला में श्री दण्डी स्वामी विद्याश्रमी ने योग शक्ति का अद्‌भुत प्रदर्शन किया। जिसमें उन्होंने एक नर कंकाल (अस्थिपंजर) को नंगा करके उसमें प्राणसंचार किया और थोड़ी देर में वह मनुष्य आकृति के रूप में लोगों के सामने जिन्दा होकर बैठ गया, क्योंकि वह क्रिया दण्डी ने पर्दे के अन्दर बैठकर की। इसलिए लोगों के मन में शंकायें बनी रहीं। उनमें से प्रधान आलोचक श्री भूदेव शर्मा विद्यालंकार थे। शंका निवृत्ति के लिए कानपुर के सभी सम्भ्रान्त व्यक्तियों ने श्री स्वामी जी से पुनः प्रदर्शन की माँग की। स्वामी जी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और कुछ समय बाद उसी प्रकार से पुनः प्रदर्शन किया गया। भूदेव शर्मा विद्यालंकार के द्वारा ही किसी व्यक्ति का अस्थि पंजर मंगाया गया और उसमें प्राणसंचार करके बहुत जल्दी ही मनुष्य रूप में परिवर्तित कर दिया गया। कानपुर के भूतपूर्व सिविल सर्जन श्री दीक्षित ने उस अस्थि पंजर से बने हुए मनुष्य की नाड़ी देखी और पूरा परीक्षण किया। बाद में उन्होंने सबके सामने परिणाम घोषित कर दिया कि अस्थि पंजर बना हुआ वह व्यक्ति बिल्कुल जिन्दा मौजूद है। कोई भी चाहे उसका परीक्षण कर सकता है। भूदेव शर्मा विद्यालंकार ने उसको मनुष्य रूप में पूर्णरूपेण ठीक देखा। ठीक इसी प्रकार की एक घटना कुछ साल पहले मिर्जापुर के एक छोटे से गाँव बरैनी में घटित हुई थी। वहाँ पर भी एक महात्मा ने एक अस्थि पंजर मँगाकर उसमें प्राणसंचार किया और वह मनुष्य जिन्दा हो गया, किन्तु उसका परिवर्तन उस स्थिति में हुआ जिसमें वह मरा था अर्थात् तीव्र बुखार की हालत में ही वह सबके देखने में आया। अस्थि पंजर में प्राण संचार करने वाले महात्मा से लोगों ने पूछा कि यह कितने दिन जिंदा रहेगा? उन्होंने कहा कि यह अधिक से अधिक आठ रोज ही जिन्दा रह पायेगा। उसके बाद यह जिन्दा नहीं रह सकेगा, क्योंकि यह अपनी आयु भोग चुका है। इस प्रकार की घटनायें भारतवर्ष में समय-समय पर घटित होती रहती हैं। जिन योगीराज लोगों की अद्‌भुत घटनाओं का स्थान-स्थान पर हमारे इतिहास में वर्णन मिलता है, उस प्रकार के महापुरुष आज कलिकाल में भी मौजूद हैं।

इसलिए योगी की शक्ति अचिन्त्य शक्ति है। ये लोग 'कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुम' की ताकत वाले होते हैं अर्थात् काम कर दें, बिगड़ी को बना दें, और बनी को बिगाड़ दें और बिगड़ी को फिर बना दें।

योगः कर्मसु कौशलम्

कर्म में कुशलता ही योग है। कर्म क्या है? इस पर विचार करें। अच्छे या बुरे का जिस क्रिया से सम्बन्ध हो अथवा किसी क्रिया के करने से चित्त में अच्छे, बुरे या राग द्वेष का भाव बन जाये वही कर्म कहलाता है। दूसरे शब्दों में राग या द्वेष से प्रेरित होकर जिस क्रिया को किया जाये वही कर्म की संज्ञा में आ जायेगा। प्रत्येक कर्म का फल मिलता है यह सत्य है किंतु तत्काल फल नहीं मिला करता इसलिए ये कर्म बीज रूप में या संस्कार रूप में कर्माशय में पड़े रहते हैं और उचित समय आ जाने पर फलोन्मुखी हो जाते हैं। इन्ही कर्मो के फल को भोगने के लिए विभिन्न शरीरो में आना जाना पड़ता है। '**भोगायतनम् हि शरीरम्**' यह शरीर भोग का आयतन या आधार है। कर्मफल को भोगने के लिए सामान्य नियम के अनुसार स्थूल शरीर आवश्यक है। कोई भी मनुष्य कर्म किये बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता। इस कारण से मनुष्य अपनी वृत्ति के वशीभूत होकर कर्म में लगा ही रहता है। शरीर निर्वाह के लिए अथवा कामनाओं की पूर्ति के लिए मनुष्य कर्मरत रहता है। भगवान भी जब–जब धराधाम पर आते है तो कर्म करते हुए दिखाई देते है, यह इसलिए ताकि मनुष्य भी उन्हीं के अनुसार कर्म करे। गीता में भगवान् कहते है ''मेरे लिए कोई वस्तु प्राप्तव्य नहीं है फिर भी मैं लोक संग्रह या लोकोपदेश के लिए कर्म करता रहता हूँ।''

इस संसार में धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष रूपी पुरूषार्थ कर्म पर ही आधारित है। लौकिक एवं अलौकिक वस्तुओं की प्राप्ति में भी कर्म ही कारण बनता है। कर्म की परिसमाप्ति ज्ञान में है। '**सर्व कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते**'। योग शास्त्रों में भी कहा गया है '**योगात् सम्प्रज्ञायते ज्ञानम्**' योग से ज्ञान की प्राप्ति होती है। यहाँ जिस ज्ञान की बात की जा रही है वह तत्वज्ञान या आत्मज्ञान ही है। '**ज्ञानाग्नि सर्व कर्माणि भस्मसात्, कुरुते**' तथा ज्ञानाग्नि के प्रकट हो जाने पर सारे कर्म जल जाते हैं। आगे फिर कहा है ''**न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते**'' इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाली दूसरी वस्तु नहीं है। ज्ञानाग्नि से सारे कर्म नष्ट हो जाते हैं। इस अग्नि को ही योग शास्त्र में योगाग्नि कहा है। उपनिषद् में भी आया है–

भिद्यते हृदय ग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयते चास्य कर्माणि तस्मिन दृष्टे परावरे॥

अर्थात् उस परम तत्व के साक्षात्कार हो जाने पर हृदय की अज्ञानग्रन्थि टूट जाती है, समस्त संशयों का नाश हो जाता है। समस्त शुभाशुभ कर्मों का क्षय हो जाता है। गीता में भी

कहा गया है–

''युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्''

अर्थात् योगी कर्मफल का त्याग करके अखण्डशान्ति प्राप्त करता है किंतु जो योगी नहीं है वह कर्मफलासक्त होने के कारण बन्धन में पड़ जाता है। गीता में ही अठारहवें अध्याय में भगवान् ने कहा है–काम्यकर्मों का त्याग ही सन्यास कहलाता है। किंतु मनुष्य को जब तक शरीर है तब तक यज्ञ–दान एवं तप करते ही रहना चाहिए क्योंकि इससे मनुष्य का जीवन पवित्र हो जाता है अतः इनका त्याग करना श्रेयस्कर नहीं है। मनीषी जन इनका त्याग कभी नहीं करते।

योग का लक्ष्य है क्लेश व कर्म की पूर्णतया निवृत्ति। योगी को धर्ममेघ समाधि की प्राप्ति हो जाने पर कर्म व क्लेश की निवृत्ति हो जाती है– **'ततः क्लेश कर्म निवृत्तिः'**। चित्त में फिर क्लेश के बीज भी नहीं रहते। फिर योगी स्वतः मुक्त हो जाता है कर्म संस्कार ही जीव के बन्धन के कारण रहते हैं।

कर्म किये बिना मनुष्य एक पल भी नहीं रह सकता यह नियम है। इसलिए योगी को चाहिए कि सदा ही सजग (awared) रहे। सजगता (awareness) योगी के लिए बहुत आवश्यक है। उसे संसार की नश्वर वस्तुओं में आसक्ति न रखकर आत्म कल्याण के लिए ही सोचना चाहिए। ऐसा कोई कर्म न बन जाये जिससे पुनः कोई नया क्लिष्ट या कठोर संस्कार बन जाये, जिसका भुगतान कभी न कभी उसे करना ही होगा इससे जन्म–मरण का क्रम बना रहेगा। इसलिए जो संस्कार बन गये हैं और भुगतान में आ रहे हैं उनका तप, स्वाध्याय जाप एवं समाधि के साधन से क्षय हो जाये ऐसा प्रयत्न करना चाहिए।

इसलिए भगवान् कहते हैं–

तस्माद् योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।

''हे अर्जुन! तू योग विद्या से जुड़ जा और कर्म भी करता चल। इस प्रकार कर्म करते हुए भी कुशलता पूर्वक कर्मजाल से बच जायेगा। हे अर्जुन! मैं भी मनुष्यों की भाँति कर्म करता हूँ, किंतु मुझे कर्म बाँधते नहीं है क्योंकि मेरा उनमें कोई स्पृहा या आसक्ति नहीं है। इस कारण से कोई भी कर्म मुझे बन्धन में नहीं डाल पाते।'' इसलिए योगी को चाहिए कि भगवान की इस वाणी को सदा ध्यान में रखें–

''तस्माद् सर्वेषु कालेषु योग युक्तो भवार्जुन।''

हे अर्जुन! तू सदा ही अपने को योग युक्त रख। आत्म कल्याण के लक्ष्य को हमेशा सामने रख। ऐसा करने से निश्चित ही तेरा कल्याण हो जायेगा।

सोऽहम् जप का रहस्य

श्री आर. सी. ठाकुर, उत्तराखण्ड

सोऽहम् मन्त्र मानव देह मे परमेश्वरी शक्ति तभी संचारित करता है जब सर्वसमर्थ गुरुदेव अपनी वैखरी वाणी का आश्रय लेकर दूसरों को दृग, पाग, स्पर्श व संकल्प दीक्षा के माध्यम से शक्ति संचरण करते है। यह मंत्र हमारे सभी धार्मिक ग्रन्थों मे, उपनिषदों में विद्यमान होने पर भी बिना गुरु के क्रियाशील नहीं होता। यह मंत्र महाविज्ञान युक्त, दिव्य–शक्ति पूर्ण अमृत विद्या है, संजीवनी बूटी है जो अति कल्याणकारी अकल्पनीय आध्यात्मिक लाभ प्रदान करने हेतु है। इस मंत्र का आत्मचिंतन करते हुए अर्थ सहित जप करने से इस निष्कर्ष पर जरूर पहुँचा जा सकता है कि मानव कोई दूसरा अच्छा काम करे या न करे, केवल सोऽहम् जप के द्वारा (अजपाजप) सर्व कर्मों को शुद्ध करके उच्चतम आध्यात्मिक लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। लेखक न तो कोई योगी है न ध्यानी, न ज्ञानी और न ही चिन्तनशील साधक पर गुरु कृपा पर अटूट श्रद्धा होने के कारण मन में उठे कुछ प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास कर रहा है, इस लेख में मानस, गीता, उपनिषद् महान सन्तो के दिव्य सन्देशों के मोतियो की माला पिरोई गई है अपना कुछ नहीं। अपना यदि कुछ है तो त्रुटियाँ एव दोष। क्योंकि मनुष्य की कृति में दोष होना सम्भव है। विद्या भी यह बहुत ही गहन तथा अनुभवगम्य है।

प्रश्न–

1. सोऽहम् पर महान सन्तों एवं ग्रन्थो के दृष्टिकोण क्या है?
2. सोऽहम् एव हंस मे भेद?
3. सोऽहम् मंत्र का प्रभाव क्या है?
4. क्या सोऽहम् जप से महावाक्यों की अन्तर अनुभूति हो सकती है?
5. क्या सोऽहम् जप से षट्चक्र भेदन अथवा कुण्डलिनी जागरण सम्भव है?
6. क्या षट्चक्र भेदन के बिना आत्मबोध या आत्मदर्शन सम्भव है? आदि– आदि

छोटी–छोटी शंकायें एव उनका समाधान इस छोटे से कलेवर में देने का प्रयास किया गया है। यदि इससे जन साधारण का, योग जिज्ञासुओं का अथवा दीक्षा प्राप्त गुरुभाई–बहनों का अंशमात्र भी हित होता है तो लेखक अपना अहोभाग्य मानकर किये गये प्रयास को सार्थक समझेगा।

सोऽहम जप अथवा हंस जप के विषय में मोक्ष परक ग्रन्थों एवम् महान सन्तों के दृष्टिकोण:

श्रीरामचरितमानस में सन्त शिरोमणि तुलसीदास जी ने उत्तर काण्ड में सोऽहमस्मि वृत्ति का गुणगान इन चौपाईयों के माध्यम से इस प्रकार किया है–

सोऽहमस्मि इति वृत्ति अखण्डा। दीप सिखा सोइ परम प्रचण्डा।

आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा।।

अर्थात् सोऽहमस्मि (वह ब्रह्म मैं हूं) यह जो अखण्ड (तैल धारावत कभी न टूटने वाली) वृत्ति है, वही (उस ज्ञान रूपी) जब आत्मानुभव के सुख का सुन्दर प्रकाश फैलाता है तब संसार के मूल भेद रूपी भ्रम का नाश हो जाता है। तात्पर्य यह है कि जड़ चेतन की गाँठ तभी खुल पाती है।

पतंजलि योग दर्शन के सूत्र 3 के अनुसार ''तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'' कहकर इसकी पुष्टि की गई। चित्त की वृत्तियों के निरोध होने के पश्चात् उस समय द्रष्टा (आत्मा) की अपने स्वरूप में स्थिति हो जाती है अर्थात् वह कैवल्य अवस्था को प्राप्त हो जाता है। इसके उपरान्त भी मायारूपी 9 प्रकार के चित्त के विक्षेपों का उसको सामना करना पड़ता है। जो निम्नलिखित हैं–

1. व्याधि, 2. स्त्यान (अकर्मण्यता), 3. संशय, 4. प्रमाद, 5. आलस्य, 6. भवरति (इन्द्रियों की आसक्ति), 7. भ्रान्ति दर्शन, 8. भातत्व व भूमिकत्व, 9. अवस्थितत्व (चित्त न लगना)। केवल गुरुकृपा प्रसाद सोऽहम् जप की अखण्ड वृत्ति ही साधक को विजय प्राप्त करा सकती है।

गीता में दसवें अध्याय के 35वें श्लोक के माध्यम से अखिलात्मा श्रीकृष्ण ने यह सन्देश दिया है–

वृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम्।

उन्होंने इसी अजपा गायत्री की ओर संकेत करके ही यह भाव दर्शाया है कि वेदों की जितनी भी छन्दोवद्ध ऋचायें हैं उन सबमें गायत्री की ही प्रधानता है। श्रुति, स्मृति, उपनिषद् एवं पुराणों में इसी अजपा गायत्री की महिमा विस्तृत रूप से विद्यमान है। इसी श्रेष्ठता एवं सर्वव्यापकता के कारण भगवान ने गायत्री को अपना स्वरूप बतलाया है। इसके उपरान्त भी 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' कहकर भी इसी जप को सर्वोत्कृष्ट जप बतलाया है जिसकी पुष्टि चौथे अध्याय में अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे। कहकर भी की है।

सन्त सुन्दरदास ने सोऽहम् मन्त्र की महिमा निम्न प्रकार कही है–

शास्त्र अरु वेद, पुरान पढ़ै किन, पुनि व्याकरण पढ़ै जो कोई।
संध्या करै गहै षटकर्महि, गुन अरु काल विचारै सोई।।
सारा काम तबै बनि आवै, मन में सब तजि राखै दोई।
सुन्दर दास कहैं सुन पण्डित, सोऽहम् जाप बिन मुक्ति न होई।।

परम सन्त कबीर जी कहते हैं– 'सोऽहम् अजपाजाप, छूटे पुण्य और पाप। महान सन्त ज्ञानेश्वर का कथन है– जिस प्रकार प्रतिबिम्ब से लेकर बिम्ब तक प्रभा सर्वत्र फैली है, उसी प्रकार सोऽहम् वृत्ति भी जीवात्मा से लेकर परमात्मा तक पहुँची हुई है तभी परमात्म तत्व में लीनता आती है।

महाराष्ट्र के एकनाथ सन्त महाराज कहते हैं–अहंकार रूपी देहाभिमान को छोड़कर सोऽहम् ऐसा आत्माभिमान धारण करने से चित्त में चैतन्यघन परमात्मा प्रकट होते हैं, मन सर्व संकल्प विकल्पों को त्यागकर परम उन्नयन अवस्था को पा लेता है, बुद्धि में पूर्ण ब्रह्म निश्चय हो जाता है।

आदि गुरु शंकराचार्य ने सदाचार नाम के ग्रन्थ में इस मन्त्र का महत्व इस प्रकार बतलाया है–

सर्वत्र प्राणिनां देहे, जपो भवति सर्वदा।
हंसः सोहमिति ज्ञात्वा, सर्वबन्धैः प्रमुच्यते।।

अर्थात् सर्व प्राणियों की देह में यह जप सतत होता रहता है। मानव हंस को सोऽहम् रूप से जानकर सर्व बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

सन्त नामदेव कहते हैं–

नामा म्हणे मना, होईं राम रूप।
अखण्डीत जप सोऽहम् सोऽहम्।।

अर्थात् मन तभी रामरूप होगा जब साधक सोऽहम् सोऽहम् का नित्य प्रति अभ्यास करेगा। ब्रह्म विद्या उपनिषद् में हंस मंत्र की महिमा बताते हुए कहा गया है–

प्राणिनां देह मध्ये तु स्थितो हंस सदाच्युतः।
हंस एव परं सत्यम्, हंस एव तु शक्तिकम्।।
हंस एव परं वाक्यं, हंस एव तु वैदिकम्।
हंस एव परो रुद्रो, हंस एव परात्मकम्।।

सर्व देवस्य मध्यस्थो, हंस एव महेश्वरः।
पृथिव्यादि शिवान्तं, तु आकाश द्याश्चवर्णकाः।
कूटस्था हंस एव, स्यान्मातृकेति व्यवस्थिताः।
मातृका रहितं मन्त्र, मा दिश्यन्ते न कुत्रचित्।।

प्राणियों के देह के मध्य में अच्युत रूप हंस सदैव स्थित रहता है। हंस ही परम सत्य है। हंस ही शक्ति स्वरूप है। हंस ही महावाक्य है। हंस ही समस्त वेदों का सार है। हंस ही महारुद्र है। हंस ही परब्रह्म परमात्मा है। सब देवताओं के मध्य में हंस ही महेश्वर है। पृथ्वी जल

आदि से लेकर शिव पर्यन्त 36 तत्व और अ से लेकर क्ष तक वर्ण तथा कूटस्थ वर्ण हंस ही है। इन सब वर्णों में मातृका रूप से हंस ही स्थित है। मातृका रहित मन्त्र का कहीं भी उपदेश नहीं किया जाता। अतः सभी वर्ण हंस रूप ही हैं।

इस प्रकार सभी ग्रन्थों में सभी सन्तों ने इस अनादि जप की स्तुति की है, यही गुरुमुखी मन्त्र है, यही अजपा गायत्री है, यही नादानुसन्धान अथवा अनहत् नाद है। सभी प्राणिमात्र का मूलमन्त्र है जिसे प्राणी निरन्तर जाने-अनजाने में अपने श्वास-प्रश्वास में जप रहा है।

सोऽहम् एवम् हंस में भेद

1. मन्त्र साधन से पूर्व हंस रूप से इसकी गति बायीं नाड़ी इड़ा और दायीं नाड़ी पिंगला में होती है।

2. हंस प्राण की विषमता युक्त गति है, और सोऽहम् सम गति है।

3. हंस अज्ञान युक्त वर्णावस्था है, सोऽहम् ज्ञानयुक्त मन्त्रावस्था है।

4. हंस जप के अधिकारी सभी प्राणी हैं जबकि सोऽहम् जपने का अधिकारी केवल मानव है।

5. मन्त्र दीक्षा से पूर्व श्वास की क्रिया हंस रूप से ध्वनि करती है उसी को मानव सोऽहम् रूप से जपकर सिद्ध करता है।

6. जीव जो अनजाने में श्वास प्रक्रिया में हंस-हंस ध्वनित कर रहा है वही गुरु कृपा से सोऽहम्-सोऽहम् जपना शुरू कर देता है और मन्त्र योग के माध्यम से हंस सोऽहम् में परिवर्तित हो जाता है। तब इसे अस्मितानुगत समाधि कहते हैं।

7. जीव जब गर्भ में होता है तभी भगवान उसको सोऽहम् मन्त्र की दीक्षा दे देते हैं। गर्भ में जीव को सातवें महीने में स्मृति ज्ञान होता है। उसे अपने किये कर्मों का पश्चाताप होता है और प्रार्थना करता है। भगवान उसे यही मन्त्र देते हैं परंतु बाहर दुनियाँ में आकर वह भूलकर सोऽहम् का कोऽहम् करने लगता है।

8. हंस प्राण में आश्रित रहता है और प्राण नाड़ीपुन्ज के आश्रित रहता है। हंस मोक्ष दायिनी विद्या है। हंस सार्वभौम एवं महाशक्तिशाली होने पर मानव में उसके अनुरूप रहती है। हंस विद्या से जागने के बाद यह क्रियाशील होकर शरीर को संगठित करती है।

9. कोई मन्त्र मातृका रहित नहीं होता, षटचक्रों में भी मूलाधार में डाकिनी, स्वधिष्ठान में राकिनी, मणि पूरक में लाकिनी, अनाहत में काकिनी, विशुद्ध में शाकिनी, आज्ञा में हाकिनी तथा सहस्त्रार में महाशक्ति मातृका रूप में देवी शक्तियाँ विराजमान हैं। मानव हंस को गुरु से सोऽहम् रूप से जानकर बन्धन मुक्त हो जाता है। हंस का सोऽहम् रूप में संशोधन और अनुसंधान है। यही मन्त्र साधना है और वस्तुतः हंस पद ही शिवशक्तियुक्त है।

10. प्राण सो कहकर अन्दर जाता है ऽहम् कहकर बाहर आता है। जाते–आते एक पूर्ण जप हो जाता है। इसी प्रकार 'ह' में प्राण अन्दर और 'स' में बाहर। कुछ काल के लिए प्राण अन्दर ठहर जाता है और ठहरा हुआ प्राण ही अपान बनकर बाहर आता है। आते समय सो को भीतर छोड़ देता है और आन्तरिक क्रिया से ऽहम् भावना धारण करता है। अतः प्राण ही क्रियाभेद से अपान बन जाता है। वस्तुतः सो ही ऽहम् है और ऽहम् ही सो है। प्राण ही अपान है और अपान ही प्राण है। हंस से पहले ह की ध्वनि उठती है और बाद में स की। सोऽहम् में पहले सो कि ध्वनि को प्राण की श्वास क्रिया के साथ मिश्रण किया जाता है तत्पश्चात् प्रश्वास के साथ ऽहम् की ध्वनि होती है। वर्णों की ध्वनि का क्रम उलट जाने के कारण यह उलटा जप बन जाता है। जैसे–जैसे मन्त्र अन्दर पहले मन में फिर बुद्धि में उतरने लगता है, गति सम होने लगती है और मानव अन्तरमुख होने लगता है। श्वास की गति धीमी होने के साथ–साथ प्रश्वास की दूरी भी कम होने लगती है। श्वास की यही मन्द गति बाह्य वृत्तियों को अन्दर ले जाने लगती है। प्राणों की बहिर्मुख गति को अन्तरमुख करना ही मन्त्र साधना है।

सोऽहम् मन्त्र का प्रभाव क्या है?

सोऽहम् दिव्य मन्त्र है, प्राणीमात्र का मूलमन्त्र है। यह किसी सम्प्रदाय का मन्त्र नहीं बल्कि प्राणी के साथ अजपाजप गायत्री के रूप में श्वास–प्रश्वास में ध्वनित होने वाला मन्त्र है। सोऽहम् संजीवनी बूटी है, साधकों को लौकिक पारलौकिक साधन प्रदान करने वाला मन्त्र है। यह सहज प्राणायाम है, स्वाभाविक ध्यान है। सिद्ध नाम है, मुक्ति का सोपान है, विजय की पताका है, भवसागर पार करने की नौका है, यह भगवान की आराधना–युक्त स्फूर्ति मन्त्र है। अपनी अन्तरात्मा का अभेद रूप से अनुसन्धान करने की इसमें क्षमता है और परमेश्वर में तादात्म्य करके आत्मसमर्पण करके आत्मैक्य कर देता है, अनैक्य की अनुभूति करा देता है, चित्त की तन्मय दशा कर देता है।

यह वर्णाक्षरों का अर्थ अनुभव करा देता है, शिव स्वरूप होने की अनुभूति करा देता है, वर्णों की शक्ति स्वरूपा एवं देवता का शिव एवं शक्ति में लीन करा देता है। सोऽहम् मन्त्र शक्ति का स्पन्दन प्राणों के साथ मिलकर करा देता है। समाधि प्राप्त करा देने वाला उच्च साधन है। यह गुरुप्रसाद से जाना जाता है। परम् सोऽहम् के अनुभव से मानव नर से नारायण, साधारण से परमहंस बन जाता है। सो और ऽहम् एक होकर स्थिर हो जाता है वही प्राणापान की समगति का कुम्भक या समाधि है। यह मन्त्र जीव से शिव, व्यष्टि से समष्टि, प्रकृति से पुरुष बनाने की सामर्थ्य रखता है। इन्द्रियों से विस्मृति शरीर भाव से निवृत्ति कराने का यह अचूक बाण है। इस मन्त्र के माध्यम से विशुद्ध आत्मा को पन्चकोषों के आवरणों से ऐसे पृथक् किया जा सकता है जैसे चावल को उसके आच्छादित करने वाले छिलके से। शरीर, इन्द्रियों, मन, बुद्धि के कार्यों को सम्पादन एवं जीव का ज्ञाता एवं दृष्टा होने का भाव नष्ट करना, जड़–चेतन, जीवात्मा–परमात्मा, प्रकृति–पुरुष, क्षेत्रज्ञ–क्षेत्री के द्वैत भाव समाप्त करना। मैं और मेरा के

अज्ञान को मिटाकर उस निर्गुण, निष्क्रिय, नित्य, निर्विकल्प निरन्जन, निर्विकार, नित्ययुक्त निर्मल में लीन होने की स्थिरता प्राप्त करना इस मन्त्र की उपादेयता है।

मन्त्र शक्ति के प्रभाव अनगिनत हैं जिसको सर्वसमर्थ गुरुदेव बैखरी वाणी का आश्रय लेकर अपनी शक्तिपात रूपिणी कृपा से मलावरणों को भेदकर साधकों में चैतन्य भाव का विकास करते हैं। मन्त्र मन्त्री, मन्त्र देवता का आराधक के चित्त में एकाकर स्फुरण होना ही मन्त्र सिद्धि का उपाय है। यही मन्त्र जपने का गहरा रहस्य है। गुरुदेव के आदेशानुसार नित्य प्रातः स्नान करके जपने से मन्त्र बड़ा परिणामकारी सिद्ध हो जाता है। इस मन्त्र को बिना स्नान किये भी खाते–पीते, उठते–बैठते भी जपा जा सकता है।

क्या सोऽहम् जाप महावाक्य एवं ब्रह्म की अनुभूति करा सकता है?

हाँ ये महावाक्य आदि काल से 4 हैं–

(1) तत्त्वमसि, (2) अयमात्मा ब्रह्म, (3) प्रज्ञानं ब्रह्म, (4) अहब्रह्मास्मि।

उपरोक्त महावाक्य केवल सूत्र मात्र नहीं है, ये असाधारण कुन्जियां हैं जो हमारे लिए वाणी, बुद्धि की पहुँच से परे हैं जो वास्तविक तत्व की परिपूर्णता की भूमि में प्रवेश करा देते हैं, ये महावाक्य जीवात्मा और परमात्मा की एकता ही सूचित करता है, एक ही नित्य तत्व का भान करा देता है। आठवीं और नवीं सदी के प्रारम्भ में दस नामी सन्त प्रणाली का पुनर्गठन करके आदि गुरु शंकराचार्य ने इन्हीं महावाक्यों के आधार पर पुनः ज्ञान उपार्जन एवम् साधकों के लिए चार मठों की स्थापना करके इस प्रकार पुनः व्यवस्थित किया–

(1) दक्षिण में कामकोटिकाधीपुरम् (श्रृंगेरी) मठ–यजुर्वेद मान्य सिद्धान्त–अहब्रह्मास्मि।

(2) पूर्व में जगन्नाथ पुरी (गोवर्धन), ऋग्वेद मान्य सिद्धान्त–प्रज्ञानब्रह्म।

(3) उत्तर में जोशी मठ (ज्योतिर), अथर्ववेद मान्य सिद्धान्त–अयमात्मा ब्रह्म।

(4) पश्चिम में द्वारका (शारदा), सामवेद मान्य सिद्धान्त–तत्त्वमसि।

इन सभी सिद्धान्तों में व्यक्तित्व तथा अहंकार का कोई स्थान नहीं। अहं ब्रह्म, अहं शिव, शिवोऽहम् सोऽहम् ही है द्वैत कुछ नहीं है। संसार मुझ से पृथक कोई वस्तु नहीं। समस्त वस्तुएँ चित्त भ्रम की उत्पत्ति मात्र हैं, जैसे वे रूप निःस्सार होते हैं जिनका निर्माण दर्पण के प्रतिबिम्ब परावर्तन द्वारा होता है उसी प्रकार विश्व ब्रह्माण्ड है जो दर्पण के रूप के समान नाशवान है।

प्रलय तथा महाप्रलय में तभी जितना सक्रिय काल होता है उतनी ही अवधि अक्रिय काल भी। उन दोनों स्थितियों में केवल आदिकाल सनातन रूप में रहती है। उसी एक तत्व से एकाकार होने में शरीरी को, शरीर का कोई ध्यान नहीं रहता और न शरीर के अंग विशेष का ही कोई महत्व। मैं शरीर नहीं तो मेरा जीवन या मरण कैसे हो सकता है? मैं हृदय नहीं तो मुझे शोक या मूर्छा का अनुभव कैसे हो सकता है? मैं कर्मशील नहीं तो बन्धन या मोक्ष का विषय कैसे हो सकता हूँ? सोऽहम् वही मैं हूँ। ये चारों महावाक्य यही अनुभूति प्रदर्शित करते हैं कि–

"मैं सखाहीन हूँ, मैं अपने को सत्‌चित आनन्द में व्यक्त करता हूँ। मैं अरूप हूँ, अमूल्य हूँ मैं अपने को हंस रूप में अथवा ब्रह्म रूप में व्याप्त करता हूँ, मैं वह मैं हूँ जो पूर्ण अर्थात् ब्रह्म है शिव है। मैं विशुद्ध चेतना हूँ, आत्म क्रीडा में रत आत्मा हूँ, मैं आदि अन्त आनन्द हूँ, मैं अपने को अपने ही द्वारा प्रकट करता हूँ, मैं अनाम हूँ, अरूप हूँ, चेतना में ज्ञात हूँ।"

मैं विकास से परे हूँ, कर्म से परे हूँ, सर्वात्मा हूँ, आनन्द हूँ, मैं वह मैं हूँ जो हंस रूप में विराजमान हूँ सोऽहम् रूप में मैं वही हूँ, मुझसे पृथक कुछ नहीं, मैं ही ब्रह्म हूँ, मैं ही शिव हूँ, मैं ही राम हूँ, मैं ही कृष्ण हूँ, मैं वह मैं हूँ जो आत्मा है जिसको न कोई शस्त्र काट सकते हैं, न अग्नि जला सकती है, न जल गीला कर सकता है, न वायु सोख सकती है, जो नित्य है, सनातन है। यही योग भाषा में सम्प्रज्ञात योग की चौथी श्रेणी है, जिसको अस्मितानुगत समाधि कहते हैं, इसमें अस्मि प्रत्यय होता है। इस समाधि के पश्चात् योगी का पतन नहीं होता। जो सिद्धों की कृपा से यदि सहज प्राणायाम, सहज ध्यान और सहज समाधि हो जाय तो इतने आश्चर्य क्यों और कैसा?

क्या सोऽहम् जप से षट्चक्र–भेदन अथवा कुण्डलिनी–जागरण सम्भव है?

जी हाँ? मूलाधार के तह में गुदा द्वार से दो अंगुल ऊपर मेरुदण्ड के तले चार दल कमल है जिसका गणेश देवता तथा डाकिनी देवी अधिष्ठात्री देवी रूप में है, प्रजनन शक्ति के बीज वीर्य का आधार यही है, एक त्रिकोण स्थान में छोटे से सर्पाकार में कुण्डलिनी साढ़े तीन घेरे लगाये सुषम्ना के निचले द्वार में बैठी है। इसको जागृत करना ही राजयोग का मुख्य उद्देश्य है। परन्तु सिद्ध कृपा से शक्तिपात द्वारा भी यह कार्य सर्वसमर्थ गुरुदेव द्वारा अधिकारी शिष्यों को सहज ही में हो जाता है। कुण्डलिनी जागृत करने के लिए कुम्भक लगाकर प्राणवायु के बल से उस पर आघात करना होता है। यह आघात सोऽहम् जप से सम्भव है। सुषम्ना नलिका के अन्दर ही ब्रह्म नाड़ी के बीच में बायीं ओर वज्रा और दायीं ओर चित्रा नाड़ियाँ भी हैं जिनमें प्राण की गति होने पर भिन्न–भिन्न अनुभव साधक को होते हैं। मलाक्रान्त होने पर तमोगुण से प्रभावित होने के कारण ये चक्र साधारणतया नहीं दीखते हैं। तमोगुण के नष्ट हो जाने से ही आन्तरिक सर्वदर्शन सम्भव है, प्रकाश पाकर ही ये चक्र भावना के कारण कमलाकार दीखते हैं। तीव्र संवेग वाले साधकों की सुषम्ना स्थित विभिन्न गाँठें प्राण के विशेष वेग से खुल जाती है।

चन्द्र और सूर्य (इड़ा और पिंगला) की गति देह में शक्ति संचार करती है और अवशिष्ट शक्ति सुषम्ना के अन्तर्गत विभिन्न चक्रों में अर्थात् स्नायु केन्द्रों में संचित रहती है। योगी अन्तर दर्शन कर लेते हैं। इड़ा एवम् पिंगला की गति को एक नया रास्ता दिखा देना आवश्यक है अर्थात् सुषुम्ना का मुँह खोलकर मेरुदण्ड की नलिका में से सहस्त्रार तक कुण्डलिनी शक्ति के लिए पथ बनाना ही तो मन्त्रों का सार है, उद्देश्य है।

महाप्रभु रामलाल जी व उनके सिद्धयोगी बच्चे

अवनीश भटनागर ,सहारनपुर

कैलाश के हिमाच्छादित उतुंग शिखरों को अपनी परम कृपामयी उपस्थिति से धन्य करने वाले परब्रह्म योगिश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी संसार पर अपनी महति कृपा बरसाने के लिए अनेक शरीर धारण करके मानव बस्तियों में उतर आये जबकि उनकी यह सभी कायायें निर्माण की हुई थी और मूल शरीर से आज भी वहीं कैलाश हिमालय में समाधिस्थ है और समय-समय पर सुपात्र जीवों को स्थूल रूप में मिलते भी रहते हैं इसके अनेको प्रमाण मिलते रहा करते है।

जिस समय परम करुणामय महाप्रभु श्री रामलाल जी ने पंजाब प्रान्त के अमृतसर शहर में पं. श्री गंडाराम जी के घर में अपना प्रादुर्भाव दरशाया तो दिनों दिन नित्य नवीन चमत्कार पंडित जी के घ र में दिखाई देने लगे परंतु वह इन सब बातों को जो कि परम दिव्य चरित्र थे इनको प्राय: छिपाते ही रहे कि कहीं उनके इस परम शक्ति सम्पन्न विलक्षण बालक को उनसे कोई छीन न ले। परंतु इस योग सूर्य बालक को वह अधिक दिन तक नहीं छिपा सके। समय आया और योगिश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी के रूप में प्रकट हुई अनादि परब्रह्म परम महाशक्ति का प्रकाश फैलने लगा। कुछ आयु बढ़ने पर उन्होंने और अति विलक्षण कृपायें जीवों पर करनी प्रारम्भ की जिससे इनकी ख्याति घर की चार दिवारी से बाहर फैलने लगी जैसे वृद्धा पर दिव्य शक्ति पात और उसको दिव्य धाम प्रदान, वन में बालकों की रक्षा, घर में लगे भगवद् चित्रों से वार्तालाप, सर्पों का प्रकट होना, वनों में निवास भी किया और दिव्य लीला चरित्र निरंतर चलते रहे। गुरु आश्रम में कुरुक्षेत्र में भयंकर नाग द्वारा सिर पर छत्र बना कर छाया करना यह सब लीला चरित्र होते रहे कुछ आयु और बढ़ने पर-

महाप्रभु श्री रामलाल जी के परम करुणामय श्री मन में यह बात नित्य आने लगी कि हमारे संस्कारी बालक जगत में जहाँ- जहाँ भी जन्म धारण किये हों हमारे पास चले आयें और अपने पूर्व जन्मों में किये गये शुभ कर्मो से गुरुदेव की शरणागत होकर संस्कारों को सद्गुरुदेव जी के शक्तिपात के द्वारा उज्जवलता प्राप्त करके आत्म उन्नति को प्राप्त करके सद्गुरु कृपा से उन्नति करते-करते परम लक्ष्य की प्राप्ती करें।

इस परम दिव्य अलौकिक कार्य के अन्तर्गत जन्म जन्मान्तरों के अनेक संस्कारी बालक करुणामय भगवान योगिश्वर श्री रामलाल महाप्रभु जी की शरणागत हुए। ये सभी बालक महाप्रभु श्री रामलाल जी से बाद में मिले परंतु महाप्रभु श्री रामलाल जी के अपने पास बुलाने के संकेत इनको पहले से ही प्राप्त होने लग गये थे। ब्राह्मण बालक हरिराम को अपने

पास बुलाकर परम करुणामय योगिश्वर श्री रामलाल महाप्रभु जी ने एक ही कृपा कटाक्ष में तत्व विजयी, अजर–अमर, सिद्धयोगी बना दिया और विशेष कृपा पूर्वक नेपाल की शीशागिर पहाड़ की कन्दरा में समाधिस्थ करके बैठा दिया, जहाँ वह तीन मास में एक बार समाधि से उठा करते हैं और सदैव ही 25 वर्ष के युवा ही दृष्टिगोचर होते हैं। काल का उनके ऊपर कोई प्रभाव नहीं है। यह सब योगिश्वर श्री रामलाल महाप्रभु जी की दी हुई कृपा के कारण से ही है।

प्रिय बालक मुलखराज जी को कांग्रेस के जुलूस में प्रथम बार देखा और देखते ही अति प्रसन्न हो गये और उनके नौ वर्ष पश्चात् शरण में आने के संस्कार को नौ दिन के अन्दर ही भुगतान कराकर अपनी शरण में बुला लिया। श्री रामलाल महाप्रभु जी ने प्रिय बालक मुलखराज पर सन्ध्या के मंत्र बोलते–बोलते ही शक्तिपात कर दिया और भगवती कुण्डलनी महाशक्ति को जाग्रत करके मस्तक पर तीसरा नेत्र प्रदान किया और तेरह वर्ष तक तुर्यावस्था में समाधिस्थ रखा जिससे वह रात दिन आँखें बन्द करे समाधि में लीन रहा करते थे और संसार का कार्य भी करते थे। यह घोर आश्चर्य की बात है परंतु यह बात हमें अन्य मत संप्रदायों के योगियों में देखने को नहीं मिलती।

श्री रामगोपाल वैश्य (गोपालानन्द जी) को सहारनपुर नगर में योगिश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी ने दिव्य शक्तिपात करके मिट्टी का एक ढेला दिया और तत्काल आत्मसाक्षात्कार देकर समाधि की उच्चतर भूमिकाओं में स्थित करके कामजयि योगिराज बनाया और इनके पूर्व (पहले) गुरुदेव द्वारा दिये गये श्राप श्री रामलाल महाप्रभुजी ने अपनी संकल्प शक्ति से तत्काल पलट दिये और उनका प्रभाव अशुभ की जगह शुभ बना दिया जबकि ऐसा इतिहास पुराणों में भी देखने में नहीं आता कि किसी ने कभी किसी के श्राप को पलटा हो। देखने में यही आता है कि चाहे साक्षात् नारायण ही क्यों न हो यदि उन्हें किसी ने कोई श्राप दे दिया तो उन्होंने भी उसको भुगतान करके ही काटा परंतु श्री रामलाल महाप्रभुजी ने श्री गोपालानंद जी के श्रापों को तत्काल पलट दिया था। ब्र. गोपालानन्द जी के द्वारा अमर संकीर्तन ध्वनि 'गोविन्द जै–जै गोपाल जै–जै की रचना करवा कर संकीर्तन भक्तिधारा में श्री राधा कृष्ण प्रेम रस की शक्तिसंचारित अथाह दिव्यानंद की बाढ़ लाकर रख दी। आज समस्त श्री कृष्ण प्रेमी इस अमर ध्वनि को गाकर मस्ती में झूम जाते हैं और विश्वभर में इसके दिव्य प्रभाव से श्री कृष्ण भक्त प्रभावित हैं। यह सब चमत्कार योगिश्वर श्री रामलाल महाप्रभुजी के द्वारा दिये गये परम शक्तिशाली दिव्य शक्तिपात का है। श्री रामलाल महाप्रभुजी ने गोपालानंद जी को यह वरदान दिया था कि जब भी तुम्हें कुछ बात जाननी हो तो सहस्त्रदल की मणिकर्णिका पीठ पर समाधि अवस्था में हमसे बात जान सकते हो स्थूल रूप से हमारे पास दौड़–दौड़ कर आने की आवश्यकता तुम्हें नहीं है।

सिद्ध शिरोमणि और सिद्धयोग विद्या को जगत में चमकाने वाले व घर–घर में पहुँचाने वाले साक्षात् योगेश्वर श्री कृष्ण रूप योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन महाप्रभुजी जिन्होंने अपने

प्रादुर्भाव से पहले ही अपने होने वाले पूज्य पिता श्री को गर्भवास में ही श्री माता जी के खान–पान रहन सहन के विषय में दिशा निर्देश दिये और प्रादुर्भाव के पश्चात् बाल्यकाल से ही भीषण तप में लग जाना आगे चलकर सिद्धयोग तत्व प्रकाशक योगिश्वर श्री रामलाल महाप्रभुजी की पूर्ण कृपा प्राप्त करना उनका शिष्यत्व प्राप्त करना उनसे तीव्र शक्तिपात प्राप्त करके गुरुदीक्षा में विलक्षण गुरु मन्त्र प्राप्त करना जो महाप्रभु श्री रामलाल जी ने अपने शिष्य समुदाय में इन्हीं को प्रदान किया था अन्य किसी को भी नहीं इस गुरुमन्त्र का प्रभाव ऐसा है यदि भूले से भी किसी के कान में पड़ जाये तो तत्काल समाधि लग जाये। इन्होंने योग की परिपूर्णता को प्राप्त करके वह सर्वोत्तम योग स्थिति प्राप्त की जो कहने सुनने से नहीं समझाई जा सकती, यानि जो साधारण वार्तालाप का विषय नहीं बस इतना ही कहा जा सकता है कि हे परम कृपामय विलक्षण सद्गुरुदेव जी आप में वह परम–शक्ति है आप जिसे चाहे उसे ही ''कुर्तुमअकुर्तम'' शक्ति वाला बना सकते हैं। आप गुरुओं के गुरु और सिद्धों के महासिद्ध है। सद्गुरु रुप में आपका प्रादुर्भाव संसार में विलक्षण कल्याण कार्यो का कारण रहा है। आपने योग एवं जनकल्याण से सम्बन्धित ऐसे–ऐसे कार्य किये जो विशिष्ट से भी अति विशिष्ट व्यक्तियों के भी वश की बात नहीं। आपका वेष अति साधारण गृहस्थ वेष रहा और शक्ति अति प्रचण्ड एवं अति विलक्षण, आपने जगत को योग विद्या का दान खुले हाथों से लुटाया और खूब लुटाया। आपसे योग–ज्ञान लेकर लोगों ने अनेक योग केन्द्र स्थापित कर लिये दाता आप ही हैं। लेने वाला यह बात चाहे जगत के सामने कहे या न कहे बस आपने जितना योग का ज्ञान दे दिया उससे अधिक कोई नहीं जानता अधिक से अधिक सब उसके अन्दर ही बात करते है जो आपने अधिकांशत: अपने श्री मुख से प्रादुर्भूत किया था। शक्तिपात तो जैसे सिर्फ आपके ही बस की बात थी आपके अलावा अब जगत में शक्तिपात के दर्शन नहीं होते इसलिए परम सिद्धेश योगिश्वर श्री रामलाल महाप्रभुजी ने इनको सर्वाधिकार प्रदान कर अपनी सारी शक्तियों से विभूषित करके अपना ही स्वरूप बना दिया इनमें और महाप्रभु श्री रामलालजी में शरीर आकृति का ही भेद है अन्यथा तत्वत: दोनों एक ही हैं। ऐसे सद्गुरु जगत में अति दुर्लभ हैं। प्राय: असंभव है क्योंकि यदाकदा ही कभी–कभी धराधाम को सुशोभित करने के लिए ही आते हैं नहीं तो अवस्थित हैं अपने नित्य वन्दनीय धाम में। जिन परम संस्कारी जीवों को ऐसे सत्यस्वरूप सद्गुरुदेव के अभय श्रीचरण किसी भी प्रकार प्राप्त हो गये बस उसी जीव का जीवन सार्थक है और यदि कहीं किसी जीव ने इनकी आज्ञा पालन करके इनका बताया कुछ साधन कर लिया तो बस इनके संकल्प से उस जीव का आत्म उत्थान निश्चित है इसमें कोई शंका है ही नहीं। आपने अनेक शिष्यों को सिद्धयोगी बनाया जैसे श्याम बिहारी शुक्ल महायोगी, संसार सिंह प्राणायाम सिद्ध, दूर दृष्टा रघुनंदन प्रसाद टाट बाबा, महात्मा अमीरानंद योगी, आचार्य चन्द्रहास, योगिनी सरोज आदि।

परम योगिनी महात्मा ऋषिदेवी जी एवं योगिनी चतुर्भुजा माता द्रोपदी देवी जी जो श्री

रामलाल महाप्रभु जी की कृपा से निहाल दो महान नारियाँ थी जो योग की उच्चतर स्थितियों को प्राप्त करके संसार के कल्याण का कारण बनीं। श्री रामलाल महाप्रभुजी ने इन दोनों को स्त्रियों को योग दीक्षा देने का महान अधिकार प्रदान किया। माता द्रोपदी देवी जी भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र जी का आवाहन करके उनको अपने हाथ से भोजन कराया करती थी और भजन संकीर्तन में यह एकदम समाधि लीन हो जाया करती थी। इनके द्वारा कराया गया संकीर्तन सतसंग दिव्य सतसंग होता था। आज भी श्री योग साधन आश्रम कुष्ठीवेरी अमृतसर एवं सती आश्रम अमृतसर में सत्संग का प्रभाव देखा जा सकता है। दोनों माता जी साक्षात् दिव्य मूर्ति थीं।

महायोगी देवरहा बाबा जी को खेचरी का साधन करते हुए आकाश में विचरण करते हुए श्री रामलाल महाप्रभु जी ने देख लिया था और दिव्य शक्तिपात देकर तत्काल खेचर सिद्ध बनाकर विशेष योग्यता प्रदान कर दी थी। जिससे वह जग में चमक उठे।

महाप्रभु श्री रामलाल जी के सैकड़ो शिष्य ऐसे है जिनका यहाँ वर्णन नहीं किया जा सका है। श्री रामलाल महाप्रभु जी की यह शान है कि या तो जीव को वह अपनी शरण में लेते नहीं और यदि लेते है तो उसे कुछ न कुछ योग शक्ति सम्पन्न अवश्य बनाते हैं और यदि जीव कहीं इनका बताया साधन कर ले तो उसे निहाल कर डालते है उसे कहीं मांगने की आवश्यकता नहीं रहती अपितु जगत में वह दाता बन जाता है। श्री महाप्रभुजी की शरणागति वही जीव प्राप्त कर सकता है जिसके जन्म–जन्मान्तरों से भारी संस्कार चले आ रहे है छोटा मोटा सस्कारी तो उनके पास भी नहीं आ सकता। अगर बस्ती में उनका संस्कारी एक बच्चा है तो बस वही उनका चिन्तन करेगा पूरी बस्ती नहीं। पूरी बस्ती के सामने उनके एक ही बच्चे की चमक सबसे अलग एवं खास होगी।

सूचना

अपने योग साधन ऋषिकेश का वार्षिक महोत्सव 31 मई, 1 व 2 जून 2009 को बहुत ही धूम–धाम से मनाया जा रहा है। सभी गुरुभाईयों से आग्रह है कि श्री प्रभु जी के इस धाम में पहुँच कर उत्सव का आनन्द लें और पुण्य के भागी बनें।

आचार्य
श्री योग साधन आश्रम
रेल्वे मार्ग ऋषिकेश–देहरादून

आएंगे गुरुजी, मुझे देने सहारा

जगदीश राए बंसल 'अधम', नई दिल्ली

आएंगे गुरुजी, मुझे देने सहारा।
मझधार में नैया, ना दीखे किनारा।।
किए कर्म पर मैं आंसु बहाऊं
अन्तर्यामि को मैं दिल से पुकारूं
करूणेश्वर जी दे दो, मुझे ईशारा।
मझधार में..........

बड़ी भूल की जो, देरी से पुकारा
मूल तो खोया और ब्याज भी गवारा
ना तड़फाओ दाता, लगा दो किनारा।
मझधार में.........

दीनदयालु प्रभु दया जो कर दो
शरण पड़े की झोली तो भर दो
रूठ न जाने, ऐसा गुरु जी हमारा।
मझधार में.........

जन-जन में प्रभु तेरा रूप निहारूं,
सोवत जागत तेरा, ध्यान लगाऊं
आशीष मिल जाए, गुरुवर तुम्हारा
मझधार में..........

दीक्षा देकर मुझे, अपना किया था
शिक्षा देकर मेरा मन जो हरा था
मेरे सिर पर रहे ये हाथ तुम्हारा।
मझधार में..........

लीला धारी से मेरा, रिश्ता पुराना
सिद्धेश्वर का मेरा हृदय में ठिकाना
योगेश्वर सहारे मैं 'अधम' तुम्हारा
मझधार में..........

गुंजन

डा. विजय सिंह

मंत्र–जप की महत्ता योग साधना में आज अपरिहार्य रूप से आवश्यक हो गयी है। चित्त वृत्तियों के निरोध के लिए प्राथमिक प्रयास जप रहस्य में निहित है। वाचिक जप से, उपांशु–जप श्रेष्ठ है और उपांशु–जप से मानस–जप श्रेष्ठ है। ऐसा अनुभवी साधकों का मन्तव्य है कि जब मंत्र वाचिक होता है तो उसका सम्बंध बाह्य वायु मण्डल से भी जुटा रहता है। उपांशु में बाह्य वायु मण्डल का सम्बंध टूट तो जाता है परंतु थोड़ा बहुत जुटा भी रहता है। यह बाह्य वायु मंत्र के स्पन्दनों में विकार लाते हैं जिससे मंत्र का पूरा–पूरा असर इन विधियों में उजागर नहीं हो पाता। वास्तविक मानस जप में बाह्य जप का प्रभाव नहीं रहता। मानसिक जप के लिए एकाग्रता की अधिक आवश्यकता होती है। इसलिए मंत्र के स्पन्दनों का स्फोट साधक को मानसिक जप में दृष्टिगत होता है।

एक और बात विचारणीय है। वाचिक–जप में श्वासों का आना–जाना स्वाभाविक ढंग से होता है। आगे चलकर श्वास–प्रश्वास की गति वाचिक–जप में लगातार लगे रहने पर मंद हो जाती है। तभी उपांशु–जप होने लगता है। कुछ माह तक अच्छे ढंग से उपांशु–जप का अभ्यास करते रहने पर देखा गया है कि श्वास–प्रश्वास की गति अव्यात्तिक रूप से क्षीण होने पर स्वतः मानसिक जप में उपांशु–जप परिणत हो जाता है। ऐसा मानसिक जप की दृढ़ता में ही सुषुम्ना का प्रभाव प्रगट होता है। सुषुम्ना निरन्तर शब्दमय है। इसका कुण्डलनी से घनिष्ठ सम्बंध है। नाद–ज्योति का प्रस्फुटन साधक की अन्तर यात्रा के बन्द द्वारों को खोलती जाती है। अब मंत्र गुंजन का रूप धारण कर लेती है।

बैखरी से मध्यमा, मध्यमा से पश्यन्ति तथा पश्यन्ति से परा यही गुंजन द्वारा क्रमशः उपलब्ध होता है। बैखरी और उपांशु में मंत्र में प्रयुक्त वर्ण रूपी शब्द और अर्थ अलग–अलग होते हैं। मानसिक–जप मध्यमा में ही होता है। पश्यन्ति में शब्द और अर्थ एकमएक होते हैं। चैतन्य का स्फुरण पश्यन्ति में ही होता है। मंत्र सिद्धि, इष्ट दर्शन, यह सब पश्यन्ति में ही घटित होता है। साधक विभोर हुआ मंत्र दाता, जीवोद्धारक त्राता सद्गुरु के अखण्ड मण्डलाकार ज्योति राशि के दर्शन में निमग्न हुआ गा उठता है–

जय जय जय गुरुदेव तुम्हारी।
आरती करूँ मोद मन भारी।।
शेष, गणेश, व्यास, जनकादिक।
नारद, सारद, शुक सनकादिक।।

सबने गुरु आज्ञा सिर धारी।
जय जय जय गुरुदेव तुम्हारी।।
ब्रह्मा, विष्णु अरु मह देवा।
निसि दिन करें तुम्हारी सेवा।।
तुम सम नहिं कोई हितकारी।
जय जय जय गुरुदेव तुम्हारी।।
ब्रह्मा, विष्णु अरु महादेवा।
निसि दिन करें तुम्हारी सेवा।।
तुम सम नहिं कोई हितकारी।
जय जय जय गुरुदेव तिहारी।।
सुर–मुनि–जन आदि घनेरे।
गुरु पूजन करें साँझ सबेरे।
दोउ कर जोर खड़े आगारी।
जय जय जय गुरुदेव तिहारी।।
हरि से गुरु महिमा अधिकाई।
जानी जिनि किन्ही सेवकाई।।
हम सब हैं प्रभु शरण तिहारी।
जय जय जय गुरुदेव तिहारी।।

मंत्र और मन की सत्व अवस्था में भावोन्मुखी हुए साधकों में, काव्य–रचना करने का सामर्थ प्रगट होता है। कबीर, रैदास अनेक, अपठित संतों की काव्य कृतियाँ आज के विद्वानों को चमत्कृत किये देती है। सूर, मीरा, के ललित पद्य तथा संत तुलसीदास कृत मानस सम्प्रज्ञात योग की उपज है। जिनके अवगाहन से सामान्य जीवों के मन एकाग्रता की ओर मुड़ने लगते है। सदगुरु कृपा से अन्तर ो वृत्त में काव्य–धारा अपने आप फूटती है–

है कालों के काल,
जगत में क्योंकर आये।
आश्चर्य चकित हूँ देख,
मर्त्यों से सम्बन्ध बनाये।।
परमित में प्रगटा असीम,
योगामृत जन–जन को मुहीम।
युग–जग–काल चक्र को भेद,

देते दिव्य दृष्टि निर्विघ्न।।
सकल जीवों के हे! मैत्रेय,
प्रकृति तेरी है अज्ञेय।
साधना पथ का पाथेय,
बाँटते तुम हो नि:श्रेय।।
समस्त चराचर में दृष्टव्य,
मन–बुद्धि का नहीं मन्तव्य।
नहीं सम्मिलित है एकांश,
तुम्ही हो स्वयं होता–हव्य।।

प्राचीन काल में ऋषियों को जिन सत्यों का दर्शन हुआ, वह भी पश्यन्ति (रितम्भरा ज्ञान) के अवस्था में ही हुआ। वे मंत्रों के सृष्टा (रचनाकार) नहीं अपितु द्रष्टा है। वे उन्हें दिव्य दर्शन के रूप में हुआ था।

''पुरुष प्रयत्नं बिना प्रकटी भूत''

मीमांसकों का मत है कि वेद न तो मनुष्य और न ही ईश्वर द्वारा रचित है अपितु ध्वनियों के रूप में वे अनादिकाल से विद्यमान हैं। शुद्ध सत्व युक्ति बुद्धि में वे प्रगट होती हैं। उच्च कोटि का गुंजन तप: पूत ऋषियों ने अनुभव किया है–

द्वन्दों का आघात सहन कर,
क्षीण हुआ जिनका तन।
काया जर्जर पर तेज युक्त,
तपस्वियों का निर्मल जीवन।।
सच मानो रहस्य यही है।
तप से होता शक्ति अर्जन।
तप: पूत बनने पर ही,
होता दुर्लभ देव दिव्य दर्शन।।
दर्शन से साधन पथ का,
कट जाता है अन्तराय गहन।
अवरोध हीन पथ पर चलना,
सदा–सहज, अत्यन्त सुगम।।
तप में श्रद्धा सहज मिली हो,
मन में हर पल प्रभु चिन्तन।

सकल सिद्धि स्वयं प्रकाशित,
संकल्प सभी होते पूरन।।
निष्काम भाव से प्रभु चरणों में,
विभोर हुआ प्रमुदित मन।
कहाँ दूर है उसे समाधि,
आत्म–ईश का पूर्ण मिलन।।

अतः आत्म–प्रसन्नता अथवा सद्गुरु की प्रसन्नता पाने का एक मात्र साधन है उठते–बैठते, चलते–फिरते सद्गुरु प्रदत्त मंत्र का चित्त के अन्दर स्फुरण एवं गुंजन होते रहना।

भूल सुधार

'अप्रैल 2009' के अंक में छपे 'आय–व्यय विवरण वर्ष–2008–2009' में सहयोग राशि रु. 5642/– के स्थान पर रु. 82897/– तथा बैंक में व्याज के जमा रु. 82897/– के स्थान पर रु. 5642/– पढ़ा जाये।

इस त्रुटि के लिए हमें खेद है।

–सम्पादक 'सिद्धयोग'

■ *बीता हुआ क्षण फिर हाथ नहीं आता। यदि तुम मानव–जीवन की अमूल्यता को भूलकर इसे व्यर्थ और अनर्थ के कार्यों में लगाया रखोगे तो तुम्हारे समान मूर्ख और कोई नहीं होगा; क्योंकि तुम मिले हुए अपने परम लाभ के समय को व्यर्थ खो रहे हो और ऐसे कर्म कर रहे हो, जिनका परिणाम इस बहुमूल्य समय का नष्ट हो जाना-इस सुअवसर का छिन जाना ही नहीं होगा, वरं जन्म–जन्म तक आसुरी योनि और भीषण नरकयन्त्रणा की प्राप्ति होगी। फिर रोने–धोने से कुछ भी नहीं होगा। अतएव अभी से चेत जाओ और अपने जीवन का प्रत्येक क्षण भगवत्प्राप्ति के साधन में लगाकर जीवन को सफल करो।*

जीव की दो गतियाँ

जनक कुलश्रेष्ठ, ग्वालियर

साधारण रूप से जो मनुष्य प्रकाश में चलता है, वह अपने गन्तव्य स्थान तक आसानी से पहुँच जाता है तथा जो व्यक्ति अंधकार में चलता है, उसे मार्ग में अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। यदि वह अपने साथ दीपक भी ले जाता है अथवा टॉर्च आदि साधन भी ले जाता है तो भी वह कटीली झाड़ियों के कारण अपने गन्तव्य स्थान तक नहीं पहुँच पाता है और उसे वापिस अपने उसी स्थान पर लौट कर आना पड़ता है, जहाँ से उसकी यात्रा प्रारम्भ होती है।

इसी प्रकार भगवान ने गीता में जीव की दो गतियाँ बताई हैं। एक उत्तरायण पथ से जाना। इस पथ से जाने का तात्पर्य है उ+तर+अयन अर्थात् उच्चतर स्थान को प्राप्त करना। इस समय भगवान सूर्य देव की गति भूमध्य रेखा से कर्क रेखा की ओर रहती है। इस अवधि में वर्षा–ऋतु समाप्त हो जाती है। मौसम स्वच्छ रहता है। मार्ग भी साफ हो जाता है। पर्वतों से बर्फ पिघलने लगती है। नदियों का जल भी स्वच्छ रहता है। इस समय में यात्रा करना सुगम हो जाता है और पथिक को अपने गन्तव्य स्थान तक पहुँचने में आसानी हो जाती है।

जब सूर्य की गति दक्षिणायन हो जाती है, तब शनैः शनैः दिनमान घटने लगता है और रात्रि काल की वृद्धि हो जाती है। वर्षा काल प्रारम्भ हो जाता है। नदियाँ पानी से उमड़ने लगती हैं। आकाश में बादल छाये रहते हैं। मार्ग कंटकाकीर्ण हो जाता है। इस समय यात्रा करना कठिन हो जाता है। यदि भूल से पथिक अपनी यात्रा प्रारम्भ भी कर देता है तो उसे या तो बीच में ही रुक जाना पड़ता है अथवा उसे वापिस लौटना पड़ता है।

आध्यात्म दृष्टि से जीव की दो गतियाँ हैं। एक गति वह है, जिससे चलकर वह अपने गन्तव्य तक पहुँच कर पुनः वापिस नहीं आता है अर्थात् जन्म–मरण से मुक्त हो जाता है और दूसरी गति वह है, जहाँ से वह अपने गन्तव्य तक न पहुँच कर वापिस लौटता रहता है अर्थात् चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता हुआ परमात्मा की अहैतुकी कृपा से पुनः मानव शरीर प्राप्त होता है। इसी शरीर के द्वारा वह साधन–भजन करके जन्म–मरण से मुक्त हो जाता है।

इसी प्रकार गन्तव्य स्थान तक पहुँचने और न पहुँचने के दो पक्ष हैं। एक शुक्ल अर्थात् शुभ पक्ष। दूसरा कृष्ण अथवा अशुभ पहलू (पक्ष) है। **''अग्नि र्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्''** गीता 8/24 अर्थात् अग्नि, ज्योति का अर्थ है प्रकाश में जाना। प्रकाश का तात्पर्य ज्ञान से है, और यह ज्ञान सद्गुरु से प्राप्त होता है। जो साधक सद्गुरु की शरण में जाकर उनके द्वारा बताए गए मार्ग पर चलता है और रात–दिन सभी समय निरन्तर भगवत

भजन में रत रहता है तथा प्रतिक्षण योग युक्त रहता है, उसकी शुभ गति होती है। उसका मार्ग शुभ अर्थात् शुक्ल होता है। उसे लक्ष्य तक पहुँचने में कोई कठिनाई नहीं होती है और अन्ततः वह उस परम स्थान तक पहुँच जाता है, जहाँ से फिर बार–बार जन्म–मरण से मुक्त हो जाता है।

जो व्यक्ति सांसारिक भोगों में ही रत रहते हैं, उनका जीवन आसुरी वृत्ति का रहता है। हिंसा, चोरी, डकैती, परिग्रह करना ही उनका लक्ष्य रहता है। ऐसे व्यक्तियों को थोड़ा प्रकाश चन्द्रमा का मिलता है। चन्द्रमा स्वयं क्षय रोगी है। उसके क्षय रोगी होने का कारण भोगों में रत होना था। चन्द्रमा को दक्ष प्रजापति ने अपनी सत्ताईस कन्यायें ब्याह दी थीं। इन सभी पत्नियों में रोहिणी अति सुन्दर थी। वह सदैव उसी के भोग में रत रहता था। अतः अन्य पत्नियों ने अपने पिता दक्ष से कहा। दक्ष ने दामाद होने के कारण समझाया परन्तु उसने अपने श्वसुर की सलाह नहीं मानी। परिणामतः दक्ष ने चन्द्रमा को क्षय रोग से पीड़ित होने का शाप दे दिया। तब से चन्द्रमा क्षय रोगी हो गया। इसके अतिरिक्त चन्द्रमा का पर प्रकाश है, उसे अपना प्रकाश सूर्य से प्राप्त होता है। शाप के कारण चन्द्रमा प्रतिदिन क्षीण होता जाता है और अन्त में अमावस्या को अँधेरा हो जाता है। इस प्रकार पथिक चन्द्रमा के क्षीण प्रकाश के कारण वापिस लौटता है और वह अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाता है। ऐसे व्यक्ति दान–पुण्य आदि सकाम कर्म भी करते हैं। ये व्यक्ति इन कर्मों को या तो अपना यश बढ़ाने के लिए करते हैं अथवा किसी सांसारिक कामनापूर्ति के लिए करते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति दक्षिण पथ के अनुयायी होते हैं जिनके मार्ग में सदा कृष्ण (अशुभ) कार्य करना ही अभीष्ट रहता है। ये भोगी व्यक्ति जन्म–मरण के चक्कर में ही पड़े रहते हैं।

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते।।

8/25 गीता

तात्पर्य यह है कि ऐसे आसुरी और भोगी व्यक्ति क्षय रोगी चन्द्रमा के प्रकाश से जाकर बार–बार जन्मते मरते रहते हैं।

इसलिए भगवान ने गीता में निष्कर्ष रूप में कहा है कि मात्र वेदाध्ययन करने से और कामनापूर्ति के लिए यज्ञ, दान करने तपस्या करने से प्राप्त होने वाले फल का अतिक्रमण कर देते हैं और अन्ततः उस परम पद को प्राप्त हो जाते हैं, जहाँ से लौटकर पुनः वापिस नहीं आते हैं अर्थात् मुक्त हो जाते हैं। क्योंकि योगी इन शुक्ल और कृष्ण मार्गों का परिणाम भली–भांति जान लेते हैं। इसी कारण जन्म–मरण से मुक्ति पाने के लिए भगवान ने अर्जुन को कहा कि प्रतिक्षण योगयुक्त रहकर उन परमेश्वर का स्मरण करते रहना चाहिए।

''तस्मात् सर्वेषु कालेषु भवार्जुन।''

वेदेषु, यज्ञेषु, तपः सु चैव।
दानेषु यत्पुण्य फलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा।
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्।।

गीता 8/28

शोक संवदेना

■ अत्यन्त दु:ख से पाठकों को सूचित किया जाता है कि 20 मार्च 2009 को सिद्धयोग पत्रिका के मुद्रक श्री जगदीश प्रसाद शर्मा का लम्बी बीमारी के बाद देहावसान हो गया। सन् 1968 में पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था। उस समय से ही राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स का सहयोग प्रकाशन में मिलता रहा है। शर्मा जी के निधन से पत्रिका को अपूर्णिय क्षति हुई है। इस दु:ख के समय पर सिद्धयोग परिवार अपनी हार्दिक संवदेना प्रगट करता है। भगवान् दु:खी परिवारी जनों को इस असहनीय दु:ख को सहन करने की क्षमता प्रदान करें।

■ बड़े दु:ख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि हमारे इन्दौर मण्डल के वरिष्ठ गुरुभाई श्री रमेशचन्द कुशवाह का 2 अप्रैल को देहावसान हो गया है। 1 अप्रैल को दरबार में बड़े ही भाव–विभोर होकर गुरुभक्ति से ओत–प्रोत भजन गाये थे। उसी रात्रि को आश्रम से आगरा अपनी बहिन के घर चले गये थे, जहाँ उनका शरीर छूट गया। निश्चित रूप से वे एक गुरुभक्त के उदाहरण थे। श्री प्रभु जी के परम पावन चरणों में स्थान पा लिया है, ऐसा हमारा मानना है। इस दु:ख की बेला पर सभी परिवारिजनों तथा परिवार के सदस्यों को हम आश्रमवासी अपनी हार्दिक संवेदना प्रेषित कर रहे हैं। प्रभु उन्हें इस दु:ख को सहने की शक्ति दें।

जय गुरुदेव!

–सम्पादक 'सिद्धयोग'

राम का रामत्व

राजेश कुमार सिंह, बलिया

मैं नहीं यहाँ संदेश स्वर्ण का लाया,
मैं इस भू को ही स्वर्ग बनाने आया।

'साकेत' महाकाव्य की ये दो पंक्तियाँ, राष्ट्र कवि मैथिली शरण गुप्त द्वारा त्रेता के राम के अवतरण को सहज भाव में व्यक्त किया है।

ब्रह्मर्षि वाल्मीकि जी की रामायण और गोस्वामी तुलसी दास जी का रामचरित मानस, ऐसा कौन सा सच्चा भारतीय होगा जो इन नामों से, ग्रन्थों से परिचित न हो। ये ही वे दो आदि रचनायें है जिनमें राम का चरित सबसे पहले विस्तार के साथ वर्णित हुआ है। यह इन्हीं रचनाओं का प्रभाव है कि शनैः शनैः राम भारतीय लोक जीवन में 'अवतार' के रूप में प्रतिष्ठित हो गये और कोटि–कोटि मानवों के आराध्य बन गये। काल चक्र के परिवर्तन के साथ इस चरित्र पर धर्म की इतनी घनी परतें जमा हो गई कि इनका मूल मानवीय रूप प्राय: विलुप्त ही हो गया, अधिकतर, यह बात दृष्टि से ओझल ही हो गई कि वस्तुतः भारतीय जीवन में इस महापुरुष का आविर्भाव घोर राष्ट्रीय संकट की घड़ी में हुआ था और अपने अप्रतिम चारित्रिक गुणों से इन्होंने भीषण संघर्ष करके राष्ट्र और उसके जीवन मूल्यों की रक्षा की थी। राम का सारा जीवन अपने युग के अन्याय–अत्याचार के उन्मूलन को समर्पित है। इस व्रत की पूर्ति में उन्होंने अपना सर्वस्व बलि पर चढ़ा दिया था। सत्पराक्रम की इस यज्ञाग्नि में उनके सारे ममता–मोह, स्नेह–सौहार्द समिधा की भांति स्वाहा होते गये। अन्त में रह जाते हैं अपने शौर्य–स्वर्ण में निखरे अकेले राम, वीतरागियों के भी प्रणम्य राम, आततायी–उच्छेदक धनुर्धारी राम।

रामायण का प्रारम्भ वाल्मीकि–नारद संवाद से होता है। वाल्मीकि नारद से पूछते हैं, हे मुनि! इस समय संसार में गुणवान, वीर्यवान, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी, दृढ़प्रतिज्ञ, सदाचार से युक्त, सब प्राणियों का हितसाधक, विद्वान, सामर्थ्यवान और एक मात्र प्रियदर्शन कौन है? जिसके संग्राम में कुपित होने से देवता भी डरते हैं वैसा महामानव कौन है? स्पष्ट है वाल्मीकि कि इस जिज्ञासा में तीन बातों पर बल दिया गया है; (1) क्या वर्तमान काल में (2) धर्मज्ञता आदि दुर्लभ चारित्रिक गुणों से युक्त (3) कोई मानव पृथ्वी पर विद्यमान है। प्रश्न के उत्तर में नारद ने इक्ष्वाकुवंशी, दशरथ के पुत्र राम का नाम लिया।

मानव संस्कृति के इतिहास में राम जैसी विभूति कहीं नहीं मिलती। वे पारिवारिक सदाचरण के प्रेरणा–स्त्रोत तो थे ही सद्गुणों के उत्कर्ष को उन्होंने नए आयाम भी दिये हैं।

साथ ही, उन्हें रखने की नई कसौटी भी उन्होंने निर्धारित की है। राम न तो किसी नए धर्म या दर्शन के प्रवर्तक प्रचारक थे और न ही राज्य–विस्तार की तृष्णा से प्रताड़ित किसी शस्त्र विजय की कीर्ति के केतु ही। उनके जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य था– निःसहाय मानव को आततायियों की दमन–दानवता से मुक्त कर उसे अभय देना एवं उसके सर्वांगीण उन्नयन तथा श्रेय साधन के लिए इस धरती को निरापद और उर्वरा बनाना। पिता की आज्ञा मानकर राम वन को जाते हैं। वन–भ्रमण के समय उन्हें मार्ग में हड्डियों का एक विशाल ढेर दिखलाई पड़ता है। पूछने पर उन्हें ऋषि–मुनि बताते हैं कि ये उन ऋषि–मुनियों की अस्थियाँ हैं, जिन्हें राक्षसों ने खा लिया है। सुना तो राम की आँखों में आँसू छलक आये। क्रुद्ध होकर उन्होंने प्रतिज्ञा की–

'निसिचर–हीन करउँ महि, भुज उठाइ पन कीन्ह।' राम आजीवन इसी आततायी–विनाशी अभियान में संलग्न रहे।

महान उद्देश्य की सिद्धि के लिए जीवन को उतने ही महान त्याग में ढालना पड़ता है। इतिहास का यह प्रमाण है कि त्याग से बड़ा आत्मबल प्रेरक और कोई स्त्रोत नहीं है। संग्राम आत्मा का हो या शरीर का, आत्मबल से ही जीता जाता है। 'मानस' के लंका काण्ड में राम ने विभीषण से विजय रथ के प्रतीक के रूप में आत्म बल के पोषक गुण–धर्मों का विशद वर्णन किया है–

सुनहु सखा कह कृपानिधाना, जेहि जय होइ सो स्यंदन आना।
सौरज, धीरज तेहि रथ चाका, सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।
बल, विवेक, दम परहित घोरे, छमा, कृपा समता रजु जोरे।
ईस भजनु सारथी सुजाना, बिरति चर्म संतोष कृपाना।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा, बर, बिग्यान कठिन कोदंडा।
अमल, अचल मन त्रोन समाना, सम, जम, नियम, सिलीमुख नाना।
कवच, अभेद विप्र गुर पूजा, एहि सम बिजय उपाय न दूजा।
सखा धर्ममय अस रथ जाके, जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके।

संकल्प की दृढ़ता को स्थिर अटल रखने वाली यह समत्व सिद्धि ही हमारे राष्ट्र–नेतृत्व की रीढ़ रही है। राम की चरित्रात्मा ने हमारे राष्ट्र को भौतिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में जो श्रेय संपन्नता दी है, उससे भारत ही नहीं, इतिहास भी धन्य हो गया है। चरित्र की यह उर्जस्विता राम को राजमहलों तथा नागरिक सभ्यताओं की संकीर्णताओं से खींचकर वन–समुद्र इत्यादि फैले विघ्न–बाधा सकल विस्तारों तक ले गई, जहाँ उनकी पर–दुःख कातरता एवं सहृदयता ने उन्हें मानव मात्र का घट–घट वासी बना दिया। अवध वासियों से उन्हें जितनी हृदय–स्पर्शिणी ममता मिली, उससे कहीं गहरी अनुरक्ति उन्हें वनवासी निषादों, शबरी

और कोल–किरातों से मिली। राम के प्रेम–पराक्रम ने बरसों से चली आ रही ऊँच–नीच की द्वैतात्मक विभक्तियों को समत्व की ममता से सदैव के लिए पाट दिया। आसिंधु हिमालय भारत वर्ष भेदभाव–मुक्त मानव–मंगल का पुण्य स्थल बन गया। रामराज्य की प्रशस्ति में 'मानस' में कहा गया है–

बयरु न कर काहू सन कोई, राम प्रताप विषमता खोई।
दैहिक, दैविक भौतिक तापा, राम राज नहिं काहु हि ब्यापा।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती, चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा, सब सुन्दर सब बिरुज सरीरा।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना, नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी, सब कृतग्य नहिं कपट सयानी।
सब उदार सब पर उपकारी, बिप्र चरन सेवक नर नारी।
एक नारि ब्रत रत सब झारी, ते मन बच क्रम पति हितकारी।

स्मरण रहे हमारी संस्कृति में धर्म चरित्र का द्योतक है। सर्वांगीण जीवन में धर्म के महत्व की निश्चित–निश्चल स्वीकृति वाल्मीकि रामायण है। राम, भरत, लक्ष्मण, सीता, हनुमान आदि सब अपने–अपने धर्म में अच्युत हैं। कहीं भी किसी प्रकार का स्खलन नहीं। यह धर्म मन के अव्यक्त से भूमि पर उतरकर कर्म सौन्दर्य में व्यक्त हुआ है। मनुष्य में चरितार्थ होकर जाति, राष्ट्र और संस्कृति की चरित्रात्मा बना है। व्यापक मानव धर्म की व्याख्या के साथ–साथ वाल्मीकि ने राष्ट्रधर्म की भी मार्मिक व्याख्या की है। राष्ट्र के लिए सुदृढ़ अविचल राजशक्ति का होना अनिवार्य है। दुर्बल एवं अस्त–व्यस्त राजसत्ता समाज और राष्ट्र के लिए घातक है। राजा की आवश्यकता के बारे में 'रामायण' में वर्णित है–

नाराजके जनपदे स्वकं भवति कस्यचित्।
मत्स्या इव बिना नित्यं भक्षयंति परस्परम्।।

अर्थात् अराजक, राजसत्ता विहीन देश में किसी की कोई वस्तु अपनी नहीं होती। मछलियों की भाँति सब लोग परस्पर एक दूसरे का भक्षण करते रहते हैं। राजशक्ति की आवश्यकता का निरूपण करने के बाद 'रामायण' में उसके स्वरूप को भी निर्धारित किया गया है–

राजा सत्यं च धर्मश्च, राजा कुलवतां कुलम्।
राजा माता पिता चैव, राजा हितकरो नृणाम्।।

अर्थात् राजा सत्य है, राजा धर्म है, राजा कुलीन पुरुषों का कुल है। राजा ही माता, राजा ही पिता है और राजा ही मनुष्य मात्र का हितसाधक है।

अराजक राष्ट्र में न धन रह सकता है न स्त्री और न सत्य। वहाँ न यज्ञ होते हैं न नाटक न कथा महोत्सव। स्त्रियाँ और कुमारियाँ स्वर्णाभूषण पहनकर उद्यानों में नहीं जा सकतीं। ऐसे राष्ट्र में प्रजा सभा नहीं कर पाती, घर और बगीचे नहीं बनवा सकती, व्यापारी व्यापार नहीं कर सकते, विद्वान शास्त्रों का चिन्तन नहीं कर सकते, तपस्वी तपस्या नहीं कर सकते। धनवान, किसान, गोपालक घर के द्वार खोलकर सुरक्षित सो नहीं सकते। आज का भारत इसी तरह के आसुरी चंगुल में ग्रस्त है। फिर देश में हिंसा, अराजकता, पारस्परिक वैर–वैमनस्य और राष्ट्रद्रोह की चिंगारियां दावानल की आशंकाएँ पैदा कर रही हैं। त्रास और विवशता ऐसी असह्य हो गई है कि परित्राण के लिए असहाय जनजीवन के सन्मुख अंततः 'रामायण के राम' का आह्वान ही शेष बच गया है। समाज निर्माण के आदर्श, कर्म शौर्य और चरित्र की तपस्या में तपकर देवों के द्वारा भी वन्दनीय कृपा करो फिर आओ राम।

वाणी का सौन्दर्य

वाणी का सौन्दर्य सच बोलने, प्रिय बोलने, हितकर बोलने एवं आवश्यक ही बोलने में है।

कैसे सधे यह सौन्दर्य ?

एक ही उपाय है- मन के साधन से............उसे सँवारने-निखारने से।

स्मरण रहे-

यन्मनसा मनुते तद् वाचा वदति।

मन के सौन्दर्य पर ही वाणी का सौन्दर्य निर्भर है, आश्रित है। कहना चाहिए, वह उसकी प्रतिच्छाया भर है।

मन सुन्दर हुआ तो वाणी सहज अपूर्व दैवी सौन्दर्य से दिप्-दिप् कर उठेगी।

मन की सुन्दरता निपट सरलता में है, नितान्त प्रेम-परिपूर्णता में है, सहानुभूतिमयता की असीमता में है, व्यर्थ संकल्प-विकल्परतता से विरत रहकर नित्य-निरन्तर आत्म-चिन्तनरतता में है।

मन के निपट सरल रहते वाणी से सच ही निकलेगा, मन के नितान्त प्रेम पूरित रहते वाणी से जो भी निकलेगा, प्रिय ही लगेगा– लगेगा क्या, होगा ही।

मन के असीम सहानुभूतिमय होते हुए वाणी हितकर छोड़ और बोल ही क्या सकती है।

मन के व्यर्थ संकल्प-विकल्प-रतता से विरत एवं आत्म-चिन्तन-रत रहते वाणी से अनावश्यक बोला ही न जायगा। वह तो मौन-रस-रसिका बनी हुई आवश्यक भी कठिनता से बोल पायगी।

सो यह मार्ग है वाणी के सौन्दर्य–साधन का। मन को साधिये, सँवारिये, निखारिये; वाणी का सौन्दर्य सहज स्वतः सध जायगा- खिल उठेगा।

वाणी का सौन्दर्य सच बोलने, प्रिय बोलने, हितकर बोलने एवं आवश्यक ही बोलने में है।

अष्टाङ्ग योग

डॉ. ऋषिराम शर्मा

(पूर्व प्रकाशित से आगे)

अपने परमात्मस्वरूप को भूलकर अज्ञान के आवरण में परमात्मशक्ति को ही अपना बल समझकर मिथ्या जीवभाव के अहंकार, शक्ति, ऐश्वर्य का दूसरी जीवात्माओं पर प्रदर्शन करते हैं, उनमें परमात्मतत्व को न पहचान कर उनसे द्वेष तथा दुश्मनी का व्यवहार करते हैं। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि इन नीच भावनाओं में बहकर आसुरी योनियों में चले जाते हैं, बार-बार प्रत्येक जन्म में निम्न तथा अशुभ योनियों में अपने दुष्कर्मों का फल भोगते है। इस प्रकार सांसारिक इच्छाओं के कारण जीवात्माओं की अधोगति होती है। सतोगुण के प्रभाव में पुण्यकर्म करने वाली जीवात्मायें भी स्वर्गलोकादि दिव्य लोकों में सुख भोगकर पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक में ही जन्म लेती है। इस प्रकार-

एवं त्रयीधर्मनुप्रपन्ना: गतागतं कामकामा: लभन्ते।।

अर्थात् इन्द्रियों के विषय-भोगों को भोगने की इच्छा वाले जीव प्रकृति के तीन गुणों की वशीभूत होकर तीनों वेदों में वर्णित चौरासी लाख योनियों में जन्म-मृत्यु का आवागमन करते रहते है। अत: सांसारिक इच्छायें ही संसार बनाती है तथा उनका पूर्णरूपेण पंच क्लेशरूपी मूल सहित त्याग करने वाले इस बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। यह पंचक्लेश भी त्रिगुणात्मक माया का आवरण है और जो साधक योगसिद्धि के द्वारा इस आवरण को हटा देता है वही अध्यात्मसिद्धि का अधिकारी है, ऐसी परमात्मा की वाणी है।

गुणानेतानतीत्य त्रीन् देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादु:खै: विमुक्तो अमृतमश्नुते।।

अर्थात् जो देहधारी जीवात्मा देहाध्यास से उत्पन्न तीन गुणों के प्रभाव से मुक्त हो जाता है, वही जन्म-मृत्यु तथा जरादि दु:खों से सदैव के लिए मुक्त होकर अमृतत्व का पान करता है यानि परमात्मा के सच्चिदानन्दस्वरूप को प्राप्त कर लेता है।

गणितीय सूत्र का संक्षेप में विश्लेषण

यह सूत्र शास्त्रीय ज्ञान के आधार पर अध्यात्म की गणितीय रूपरेखा है। सूत्र के तीन गुणनखण्ड अध्यात्म-सिद्धि के तीन प्रमुख मार्गों का संकेत करते हैं। हम तीनों मार्गों का संक्षेप में वर्णन करेंगे। जिज्ञासुओं के लिए मोक्षदाता शास्त्रों में विस्तृत वर्णन मिल जायेगा। यहाँ पर हम संक्षेप में सांकेतिक परिचय ही देने का प्रयास करेंगे। तीनों मार्गों में तीन अवयव यानि पूर्वजन्मों के संचित अध्यात्म-संस्कार (I), वैराग्य (R) तथा अभ्यास (Y,M,) का विशेष

योगवान है जोकि अध्यात्मसिद्धि की आधारशिला है। किसी भी कार्य की सिद्धि के लिए अधिकारत्व परमावश्यक होता है और यह तीनों अवयव अधिकारत्व का निर्माण करते हैं। जब जीवात्मा मनुष्ययोनि के अतिरिक्त अन्य शरीर को धारण करती है तब आध्यात्मिक पुरुषार्थ शून्य होता है तथा R=0, क्योंकि अन्य योनियाँ भोग योनियाँ हैं। किंतु परमात्मा की अहैतुकी कृपा के परिणामस्वरूप उसके अध्यात्म–संस्कार (I) का नाश नहीं होता, ऐसी उन करूणासागर की प्रतिज्ञा है कि ''नहि कल्याणकृत कश्चित् दुर्गति तात् गच्छति।'' अतः जन्म के समय S=I की स्थिति बनी रहती है, यद्यपि संस्कार सुप्तावस्था में रहते हैं। मनुष्य–योनि में भी परमात्मा के कृपा प्रसाद से S>,I की स्थिति बनी रहती है किंतु आध्यात्मिक उत्थान के लिए पर्याप्त वैराग्य (R>I) तथा पुरुषार्थ की विशेष आवश्यकता है तभी इस प्रयत्न के सापेक्ष के साथ ईश्वर–कृपा तथा गुरुकृपा परम लक्ष्य की ओर ले जाते हैं। इसमें भी अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है वेदशास्त्र का यह निर्देश कि–

''यदेव विद्यया करोति श्रद्धोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति'' (छान्दो. 1/1/10)

अर्थात् विवेकज्ञानपूर्वक परम श्रद्धाभक्ति से किया गया पुरुषार्थ अतिशीघ्र फलदायी होता है। साधक की आध्यात्मिक प्रगति में तीनों मार्गों का अंशदान होता है, फिर भी साधक को अपने स्वभाव के अनुकूल मार्ग चुनना चाहिए। स्वभाव पूर्वसंस्कारों का प्रतीक है, अतः परमात्मा का यही निर्देश है कि स्वभाव के अनुकूल साधना ही फलदायी होती है। एक और मूल बात ध्यान में रखना है कि परमात्मा का स्वरूप अनन्त है, उसका ज्ञान भी अनन्त है और यह ज्ञान क्रियान्साध्य नहीं है। अतः अध्यात्म की सिद्धि उस परात्पर विशुद्ध ब्रह्म की कृपा के बिना सम्भव ही नहीं। विशुद्ध ब्रह्म का प्रतीक केवल दो सगुण सत्ता हैं जो स्वयं गुणातीत अवस्था में रहते हुए भी जिज्ञासु जीवात्माओं की मुक्ति के लिए ही सगुण तथा साकार रूप में कृपा की वृष्टि करते हैं और उनके कृपा–प्रसाद से ही अध्यात्म की एक्सपोनेन्सियल वृद्धि होती है जिसमें अनन्त की ओर ले जाने की सामर्थ्य है। बस केवल एक अपेक्षा है जिसका संकेत महर्षि व्यास जी ने ब्रह्मसूत्र में किया है कि–

कृतप्रयत्नापेक्षः तु विहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्यः।।

अर्थात् शास्त्रों के विहित तथा निषिद्ध कर्मों की सार्थकता के लिए प्रयत्न की अपेक्षा है। इसी अपेक्षा को बीज बनाकर विशुद्ध ब्रह्म के प्रतीक ईश्वर तथा सद्गुरुदेव की कृपा–वृष्टि का लाभ उठाइये। स्वयं भगवान शिव ने अपने उपदेश में इसी ओर संकेत किया है कि–

पश्चात्पुण्येन लभते सिद्धेन सह संगतिम्।
ततः सिद्धस्य कृपया योगी भवति नान्यथा।
ततो नश्यति संसारो नान्यथा शिवभाषितम्।
योगेन रहितं ज्ञानं न मोक्षाय भवेत् विधे।।

अर्थात् शास्त्रों के द्वारा उपदेशित कर्मों के पुरुषार्थ से पुण्यों को अर्जित करें जिसके फलस्वरूप सिद्धों की संगति मिलती है। तत्पश्चात् सिद्ध की कृपा से योगी बनो। योगी बनकर ही अविद्या का संसार नष्ट होगा, अन्य कोई उपाय नहीं है। योग के बिना ज्ञान मोक्षदाता नहीं बनता। इसका कारण यही है कि योगानुभूति के बिना ज्ञान केवल शब्दज्ञान है। शब्दज्ञान से जीवात्मा तथा परमात्मा की अभिन्नता का अनुभव नहीं होता।

इस साधना में यह सदैव याद रखना है कि जीवात्मा का पिता परमात्मा है जो सदैव हितकारी है तथा कल्याणस्वरूप है। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि–

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिः अहं बीजप्रदः पिता।।
तदेव चाद्यम् पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृतिःप्रसृता पुराणि।।

अर्थात् समस्त योनियों में जितनी भी जीवात्मायें जन्म लेती हैं, उन सब की अक्षर ब्रह्म महद् योनि है तथा सगुण परमात्मा ही उनका पिता है। अतः कल्याणकांक्षी को उस कल्याणस्वरूप परमात्मा के समक्ष समर्पण ही सर्वोत्तम साधना है। एक और बात सदैव ध्यान रखना चाहिए कि परमात्मा कर्माध्यक्ष है और अपने अंशरूप जीवात्मारूपी बच्चों को अपनी प्रकृतिरूपी उँगली पकड़ाकर कर्मरूपी चलना सिखाता है तथा गिर पड़ने पर उठाता भी है। यही संदेश भगवान श्रीकृष्ण ने दिया है कि–

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिं ऋच्छति।।

अर्थात् यज्ञ तथा तपादि सभी पुण्यकर्मों का भोक्ता परमेश्वर ही है, वही समस्त प्राणियों का मोक्षदाता परममित्र है। जो इस रहस्य को जान जाता है उसे ही परम शान्तिरूपी मोक्ष की प्राप्ति होती है।

यह तीनों मार्ग परस्पर इस प्रकार सहायक हैं कि किसी मार्ग का पुरुषार्थ दूसरे मार्ग में भी यथावत योगदान करता है। इसी कारण यह स्वतन्त्र न होकर अवयवों के माध्यम से एक दूसरे से जुड़े भी हैं तथा गुणनखण्ड होने के नाते अध्यात्म–सिद्धि में समान महत्व रखते हैं। सर्वाधार, सर्वनियन्ता तथा सर्वसाक्षी परमात्मा ने स्वयं यह दायित्व लिया है कि परमार्थ के लिए किया गया प्रयत्न कभी नाश नहीं होगा, क्योंकि–

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशः तस्य विद्यते।।

अर्थात् हे अर्जुन! अध्यात्मसिद्धि के लिए किये गये पुण्य–कर्म का नाश नहीं होता, न इस लोक में और न मृत्यु के पश्चात्।

मन के कहने में न चलना

मन के कहने में नहीं चलना चाहिए। जब क यह मन वश में नहीं हो जाता तब तक इसे अपना परम शत्रु मानना चाहिए। जैसे शत्रु के प्रत्येक कार्य पर निगरानी रखनी पड़ती है वैसे ही इसके भी प्रत्येक कार्य को सावधानी से देखना चाहिए। जहाँ कहीं यह उल्टा-सीधा करने लगे, वहीं इसे धिक्कारना और पछाड़ना चाहिए। मन की खातिर भूलकर भी नहीं करनी चाहिए। यद्यपि यह बड़ा बलवान् है, कई बार इससे हारना होगा; पर साहस नहीं छोड़ना चाहिए। जो हिम्मत नहीं हारता वह एक दिन मन को अवश्य जीत लेता है। इससे लड़ने में एक विचित्रता है। यदि दृढ़ता से लड़ा जाय तो लड़ने वाले का बल दिनोंदिन बढ़ता है और इसका क्रमशः घटने लगता है, इसलिए इससे लड़ने वाला एक-न-एक दिन इस पर अवश्य ही विजयी होता है। अतएव इसकी हाँ-में-हाँ न मिलाकर प्रत्येक कार्य में खूब सावधानी से बर्तना चाहिए। यह मन बड़ा ही चतुर है। कभी डरावेगा, कभी फुसलावेगा, कभी लालच देगा, बड़े-बड़े अनोखे रंग दिखलावेगा; परंतु कभी इसके धोखे में न आना चाहिए। भूलकर भी इसका विश्वास न करना चाहिए। इस प्रकार करने से इसकी हिम्मत टूट जायगी, लड़ने और धोखा देने की आदत छूट जायगी। अन्त में यह आज्ञा देनेवाला न रहकर सीधा-सादा आज्ञा-पालन करने वाला विश्वासी सेवक बन जायेगा।

मन लोभी, मन लालची, मन चंचल, मन चोर।
मन के मत चलिये नहीं, पलक पलक मन और।।

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सेवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनौखी एवं प्रभावशाली योजना -

निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर स्पेस आवंटन (विज्ञापन प्रपत्र) का विज्ञापन

2. लैटर बॉक्सों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप)

3. मेल वाहनों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पेंटिंग चार्ज रु. 500.00 प्रति पैनल

4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 5.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह

5. डाकघर के अन्दर या बाहर फ्लोसाइन बोर्ड अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह

6. डाकघर के पत्रों पर स्टाम्प कैंसिलेशन की डाई लगाकर विज्ञापन दर रु0 100/- प्रति डाई प्रतिदिन डाई का मूल्य रु0 400/-

7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर उत्पादों का विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566 सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) रामलाल शर्मा